UNIVERSAL LIBRARY

OU_180086

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1 | S 56 D Accession No. H 2698

Author श्रीवास्तव, प्रतापनारायण ।

Title दो साथी ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
भीष्म एण्ड ब्रादर्स,
पटकापुर, कानपुर

मुद्रक
शुक्ल प्रेस, कानपुर

लेखक—

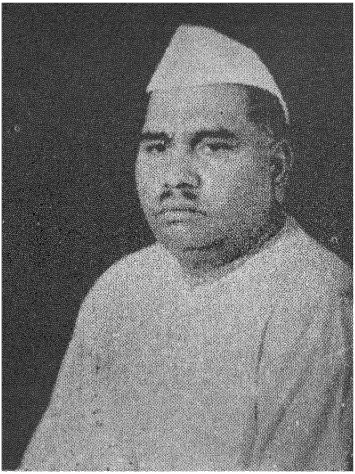

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

दो साथी

दो साथी

हिन्दू मुसलिम वैमनस्य का कोई प्रभाव उनपर नहीं पड़ा था। यद्यपि वे उसके प्रभाव से दूर थे, किन्तु दोनों एक साथ रहते थे, पड़ोसी थे, सुख दुख के साथी, कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलते थे। गैरों के सामने दोनों दो जिस्म और एक जान थे, और वे दो जिस्म दो ही नहीं, एक और एक मिलकर ग्यारह थे। मुहल्ले भर की आंखे उनपर पड़ी हुई थीं। दोनों ईमानदार और व्यवहार के सच्चे, तथा बात के धनी थे। सेवा और सरलता के लिए विख्यात थे। उनके नाम थे लालता और फकीरे!

एक हिन्दू था और एक मुसलमान था। दोनों के धर्म विभिन्न थे, किन्तु फिर भी दोनों मित्र थे। सत् तम और रज के गुणों से न्यूनाधिक परिणाम के अन्तर विभेद से-समग्र सृष्टि परिपूरित हैं—और इसी कारण से संसार में ही नहीं, समग्र सृष्टि में इतना न्यूनाधिक अन्तर दृष्टि गोचर होता हैं, और इसी से इतने विचारों तथा इतने धर्मों की उत्पत्ति हुई है। भगवान की सृष्टि में सबको जीने का अधिकार है—और सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है, अतएव सब धर्म सत्य हैं। एक-एक धर्म एक

विशेष प्रकार के जन समुदाय को, जिसमें तीनों गुणों की समान तथा समानान्तर एकता है–भगवान के अस्तित्व का दिग्दर्शन कराता है। उनको भी उसी प्रकार जीवित रहने का अधिकार है, जितना कि हमारे धर्म को है!

दोनों अपने मन का सुख दु:ख कहते थे और आपस में कोई परदा न रखते थे। एक दिन शाम को मील से लौटते समय लालता ने कहा—"फकीरे, अब दिन कैसे कटेंगे, यही चिन्ता रात दिन रहती है।"

फकीरे ने खखार कर कहा—"यार फिकर किस बात की–कुछ हँस के काट लेंगे और कुछ रो कर के ? जिन्दगी, दोस्त! ऐसी ही कटा करती है। जो काट लेते हैं हँसकर, रोने वाले दिनों को भी, वही तो सच्चे सूरमा हैं ?

लालता चुप चाप सोचने लगा, कुछ अनमना और कुछ खोया हुआ सा!

फकीरे ने छलकती हुई सहानुभूति के साथ कहा—"दोस्त क्या सोचते हो ?' और यह कह कर उसने लालता की पीठ पर हाथ रक्खा।'

लालता ने उसका हाथ सप्रेम दबाते हुए कहा—"दोस्त, अपने जीवन का दुख अपने को ही सहना उचित है।

फकीरे ने लालता की आँख में आँख डालते हुए कहा—जानते हो, दुई को मिटा कर एक जिस्म हो जाने का नाम दोस्ती है। तुम्हारी पीड़ा मेरी पीड़ा तुम्हारे न कहने से जो पीड़ा होती है, वह शायद उतनी न होगी, जब तुम अपना दुख मुझसे कह दोगे। दो अशक्त तिनके भी कभी कभी सम्मिलित प्रयास से झंझावात और तूफान से सुरक्षित गुजर जाते हैं।"

लालता ने हँसकर टाल दिया। उसका घर आ गया था, वह गली की ओर मुड़ा। फकीरे के घर के जाने का मार्ग पासही एक गली में था। दोनों के घरों की पीठ एक थी और जाने का मार्ग उतना ही एक दूसरे के प्रति उलटा था, जितने कि दोनों के धर्म थे, परन्तु दोनों की पृष्ठ भूमि एक थी। वही सत्य था जो विराट भगवान का व्यापक रूप होकर अणु और परमाणु में व्याप्त है। फकीरे ने धीरे से कहा—"लालता! तो बिना बताये हुये ही चले जायेंगे?" उसका स्वर कुछ भीगा हुआ था। लालता को उसकी ओर देखने का साहस नहीं हुआ। उसने आंख चुराते हुए कहा—"कल कहूंगा।" और यह कह कर वह तेजी से घर के अन्दर घुस गया। फकीरे एक क्षण भर के लिए ठिठका, खखारा, और एक दीर्घ निश्वास लेकर अपने घर की गली में चला गया।

फकीरे ने घर के सामने एक अपरिचित दाढ़ी वाले मौलवी को टहलते हुए देखा। वह कुछ ठिठका, उसकी भौंहे कुछ चढ़ गई, किन्तु अपने मन का भाव दबाकर वह आगे बढ़ा। इसने हँसकर उसका स्वागत करते हुए कहा—"दोस्त आज बहुत देर लगाई।"

फकीरे केवल मुसकराया और चुप रहा।

वह उसके अत्यन्त समीप आकर धीमें स्वर में कहने लगा—मेरा नाम इस्माइल है, मैं पाकिस्तान से आया हूं! बहुत जल्द हमारे पाकिस्तान की चढ़ाई होने वाली है, उसी सिलसले में तुमको होशियार करने आया हूं।

"मौलवी साहब, हिन्दुस्तान के टुकड़े के बाद भी···?" फकीरे कह न पाया, बीच ही में इस्माइल ने टोंक दिया।

"हां, अब इन दो टुकड़ों को एक में मिला देने का इरादा है, लेकिन वे दोनों एक होंगे तलवार के जोर से या जैसे अंग्रेजों ने किया था।"

"मालूम यह होता है कि इतने पर भी सब्र नहीं करोगे। बेगुनाहों और मासूमों का खून गिराते तुम्हे शर्म नहीं आती, मन में डर नहीं लगता। अरे ऊपर खुदा है, इसको तो न भूलो!"

"कहां भूलता हूं, उसी की मन्शा तो हम लोग पूरी कर रहे हैं। इसलाम की रोशनी इस अंधेरे को दूर न करेगी। तुम हिन्दू हिन्दुस्तान के हो, यह भूल जाओ। तुम्हारा मुल्क मुसलिम हिन्दुस्तान है। तुम गजनी बुतशिकन की औलाद हो। जानते हो, महमूद ने जवाहरातों के ढेर को ठुकरा दिया था, मगर बुत शिकनी से मुंह न फेरा था।"

"वह जिहालत का जमाना था। उन दिनों हैवानियत के दायरे से गुजरकर इन्सान अपने दायरे में नहीं आ पाया था, इसीलिये वह उतना ही जटिल था। मगर अब ऐसा नहीं है। मौलवी साहब, अब तो अपने को पहिचानो, वक्त को पहिचानो और मुल्क को पहिचानो। तुम अब भी अपने को अंग्रेजों के 'जादू के डंडे' के प्रभाव से मुक्त नहीं कर सके! अफसोस, जो खुद गुलाम है वह दूसरों को क्या आजाद करेगा?"

"देखता हूँ कि लालता ने तुम्हारे दिल और दिमाग को कुछ चाँदी के टुकड़ों से शायद खरीद लिया है। उसने तुमको अपना ही जैसा नापाक और नाकिस बना दिया है।" इस्माइल ने हँसते हुए कहा।

"हां जैसे तुमने अपने ईमान को, अपनी इन्सानियत को और अपने धर्म को अंग्रेजों के हाथ बेंच दिया था। उन्होंने तुम्हारी जमीन को तुमसे बेगाना करवा दिया, सुख दुख के साथी भाइयों को दुश्मन बना दिया, और

तुम्हारी इन्सानियत को खाक में मिलाकर तुम्हें 'हलाकू' और चंगेज बना दिया। यह तुम भूल जाते हो कि जितना तुम्हें अख्त्यार है इस दुनिया में, उतना ही तुम्हारे जैसे नामधारी दूसरे इन्सान को भी है। इसलाम ने हमेशा बराबरी का सन्देश दिया है। नापाक और नाकिस वह इन्सान को नहीं, हैवान और हैवानियत को मानता है। लुटेरों और हैवानों को जब तुम अपना रहनुमा बनाते हो, इसलाम प्रचारक सिद्ध करते हो, तब चिश्ती, और मन्सूर की औलाद कब होने का दावा कर सकते हो? आग लगाना तुमने सीखा है, वही सिखाते हो, बुझाना न जानते हो, और न जानना चाहते हो।"

"चुप रहो, जरा धीरे से बोलो मेरे पीछे खुफिया लगी है, कहीं कोई सुन लेगा तो आफत आ जायगी।" कुछ डरते हुए इस्माइल ने कहा।

"खुफिया से इतना डरते हो, लेकिन खुदा से नहीं! अपनी रूह से इन्सान नहीं डरता, लेकिन डंडों से डरता है? यही बात है जो इन्सान और हैवान का फर्क बतलाती है। दरअस्ल, इन्सान अपनी रूह को डरता है, और हैवान अपने जिस्म को।"

मौलवी ने तिलमिला कर कहा—"तुम्हारे जैसे दोगलों के रहते हिंदुस्तान पाकिस्तान में शामिल नहीं हो सकता, इसलिए पहिले तुम्हीं को……।"

यह कहकर उसने कपड़ों के भीतर से छुरी निकाली और फकीरे पर वार किया। फकीरे ने पीछे हटकर वार खाली कर दिया।

इस समय फकीरे के घर का दरवाजा खुल गया और लालता ने दौड़ कर इस्माइल को पकड़ लिया।

फकीरे ने कहा—"भाई, इस अभागे को छोड़ दो, जाने दो।"

लालता ने इस्माइल की डाढ़ी पकड़ कर ज्योंही हिलाना चाहा, त्योंही सारी डाढ़ी उसके हाथ में उखड़कर चली आई। उसने चिल्लाकर कहा—"यह तो कोई बहुरूपिया बदमाश है।"

इस्माइल नामधारी युवक ने कहा—"बहुरूपिया जरूर हूँ, लेकिन बदमाश नहीं। मैं मनोहर हूँ, सभा की आज्ञानुसार फकीरे की परीक्षा लेने आया था।"

लालता ने सजग होकर कहा—"तब शायद वह पत्र तुम्हारी ही सभा का भेजा हुआ है, जिसमें लिखा था कि आज शाम को अपने घर के पीछे से होकर फकीरे के घर की बाहरी दालान में जाकर जो कुछ हो, उसे देखो और सुनो, तब तुमको उसकी असलियत मालूम होगी।"

इस्माइल नामधारी मनोहर ने हँसते हुए कहा—"हां वह हमारा ही पत्र था। मुसलमानों को सचाई की कसौटी पर कसने का हमारा अपना उपाय है।"

लालता—"लेकिन फकीरे तो भेजा हुआ भारत का सिपाही है। हिन्दू मुसलमानों के कितने ही दंगे जब इसके रवैये को नहीं बदल सके, तब तो पाकिस्तान बन जाने से इसकी संभावना ही मिट गई है। हमारी दोस्ती में फर्क डालने का यह प्रयत्न स्तुत्य नहीं है। दोपहर को जबसे चिट्ठी मिली है तबसे मन बेचैन था। मील से लौटते समय फकीरे ने बहुत कुछ पूंछा, किन्तु बता न सका।"

फकीरे ने तुरन्त कहा—"बताते कैसे तुम्हारे मन में कुछ मैल आ गया था।"

ललता ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"सत्य ही कहूंगा, अवश्य शंका उत्पन्न हो गई थी।"

फकीरे ने हँसकर कहा—"यही 'शंका' तो अंग्रेजों की देन है, जिसे उन्होंने मुक्त हस्त होकर हमको प्रदान किया है। जब तक हम एक दूसरे से सशंकित हैं तब तक क्या हम सच्चे मानी में आजाद हुए हैं? गुलामी, शंका से आवृत है, आजादी नहीं।"

मनोहर और ललता लज्जित दृष्टि से फकीरे की ओर देखने लगे।

विजय के दिन

नील रत्नाकर की उत्तुङ्ग तरंगे भीमवेग से उठकर हमारा स्वागत कर रही थी, आकाश उस दिन कुछ ज्यादा परिष्कृत और नीला था। उस दिन प्रकृति का साज कुछ नवीन था, और एक अद्भुत आकर्षण लिए हुए था, क्योंकि वह हमारी विजय का दिन था।

हम अवकाश ग्रहण कर अपनी जन्म भूमि की ओर लौट रहे थे। रास्ते में ही रेडियो ने हमारी जीत का सन्देश दिया था।

वह दिन हमारी जीत का था और हमारे सैनिक जीवन के अन्त का था! गांव के वे दृश्य बार-बार याद आ रहे थे, जहॉं हमारा बाल जीवन बीता था! किशोर अवस्था बीती थी, और प्रथम प्रेम का परिचय हुआ था। आह, आज वे कितने मधुर और कितने पहचाने हुए अपने हो गये थे। बार बार अपने आप पुरानी स्मृतियां सजग हो रही थी, 'उनको याद करने में एक मधुर-सा कम्पन, मीठा-सा रोमाञ्च, और अस्फुट हर्ष हो रहा था। क्योंकि अतीत की स्मृति में ही जीवन का मिठास सन्निहित है। आज का दिन उस दिन से कितना भिन्न है जब हमारी यात्रा प्रारंभ हुई थी। हम हतोत्साह थे, हमारे लिये प्राणों की बाजी लगी हुई थी। हमारा जीवन निरापद न था, हमारी समुद्र-यात्रा ही विपन्न थी। आज हम विजय का संदेश लेकर घर जा रहे थे, जहां हमारे जाने से दिवाली

मनाई जायगी, घी के दीपक जलाए जायगे, और एक हर्षावेग सबको विभोर कर देगा। हमारे माता-पिता अपनी खोई हुई निधि पाकर फूले न समाएंगे, भाई और भगिनियां हमारी भुजाओं मे भर जायगें, और एकान्त मे वर्षों स रोता हुआ 'उसका' मुख मधुर-मिलन की मुस्कुराहट से भर जायगा। उस एक सलज्ज छोटी-सी हंसी में हमारे विछोह की पीड़ा और मिलन का मधुर अनुराग झॉक रहा होगा।

वह दिन भी याद है जिस दिन हम विदा हुए थे। उमंगों का एक समुद्र छिपाए हुए और खुद रोते हुए व दूसरों को रुलाते हुए गये थे। माता-पिता छट पटाते थे कि हमारा लाल अब हमको शायद ही मिले, भाई-बहन कहते थे कि हमारा दाहिना हाथ टूट गया, और 'वह' किसी भावी आशका से सिहर उठती थी-जिसको व्यक्त करना उसके लिये असम्भव था, किन्तु जिसको समझना हमारे लिये अति सहज था।

रोते रोते 'उसकी' आँखें सूज गई थीं! मैं उसको समझा रहा था—"तुम एक राजपूत रमणी हो तुम्हारे पितृ-वश ने अपने जातीय गौरव को सुरक्षित रखा है और तुम एक ऐसे वश में विवाहित होकर आई हो, जिसने तलवार की लड़ाई मे बहादुरों के दांत खट्टे किए हैं। अपने पति को समराङ्गण भेजने में तुम्हारा गौरव और सुहाग निहित है। आज मेरे लिए कितने गौरव का दिन होता यदि तुम भी मेरे साथ युद्ध में प्रस्थान करती! उसने चकित होकर कहा—"हाँ, तो फिर मैं भी चलूंगी!"

मैंने उसको बाहु-पाश में आबद्ध करते हुए कहा—"वह दिन भी आवेगा जब तुमको भी मेरे साथ युद्ध-क्षेत्र में हाथ बटाना पड़ेगा। अभी वह समय नहीं है।"

उसने कहा—"वह समय कब आवेगा ? मैंने उसकी एक बिखरी हुई लट को सुलझाते हुए कहा—"वह समय हमारे स्वातन्त्र्य-युद्ध का होगा, किन्तु उस दिन हम तलवार से नहीं लड़ेंगे, अपने मानसिक बल से लड़ेंगे। मानवीय अस्त्रों से नहीं, दैविक अस्त्रों से लड़ेंगे। हम वार नहीं करेंगे, उनके वार झेलेंगे, उनकी गोलियां अपनी छाती पर लेंगे और उनकी तलवार के प्रहार अपनी गर्दन पर सहेंगे। उस समय हमारी पैतृक वीरता सच्चे भारतीय वेष में निखर कर संसार को चकाचौंध कर देगी।" उसके छल छलाते हुए नेत्र विराम करने लगे, उसने आशान्वित नेत्रों से देखते हुए कहा—"उस युद्ध में क्या तुम भाग लोगे ?"

मेरा हृदय धड़कने लगा, मैंने कह तो दिया—"हाँ,-अवश्य !" किन्तु दूसरे ही क्षण मन ने कहा—"तुम प्रवंचना करते हो, तुम जीवित लौटोगे, इसी का क्या भरोसा है ?" मेरी आंखें अपने आप नत हो गईं। उसने दूसरे ही क्षण उत्तर दिया—"मैं तुम पर विश्वास करती हूं। मैं उस युद्ध तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी, और यदि......?"

वह ठहर गई, और मेरी ओर देखने लगी। मैंने व्यग्रता से पूछा—"कहो रुक क्यों गई ?"

उसने कुछ मुस्किराहट के साथ कहा—"नहीं, जाने दो, कुछ नहीं एक योंही आशंका हो गई थी।"

मैंने चिन्तित होकर पूछा—"तुमको कहना ही पड़ेगा।"

उसने सलज्ज नयनों से कहा—मैं कह रही थी, कि यदि तुमको लौटने में देरी हुई तो क्या मैं अकेले उस युद्ध में नहीं सम्मिलित हो सकती ?"

मैंने सावेग उसको अपने अंक में बद्ध करते हुए कहा—अवश्यमेव तुम ऐसे युद्ध में शामिल हो सकती हो, जिसकी ओट में भारत की आजादी झांक रही हो। वीर रमणी, वीर पत्नी, वीर माता की भांति जिस दिन तुम शांत युद्ध आङ्गण में अवतीर्ण होगी, वह दिन मेरी विजय का होगा, मेरे अनन्त गौरव का होगा।"

उसने हँसकर कहा—"अच्छा तुम सानन्द युद्ध-क्षेत्र में जाओ, मेरा सुहाग तुम्हारी रक्षा करेगा, और मुझे दृढ़ विश्वास है कि तुम सुरक्षित, स्वदेश वापस आओगे, किन्तु यदि .....! कहते कहते वह पुनः रुक गई। मैंने उसका आशय समझकर कहा—"ऐसा कदापि नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि तुम एक दिन मेरा स्वागत करोगी, और हम तुम दोनों मिल कर भारत को स्वतंत्र कर सकेंगे।"

यह सुनकर वह मुस्किराई किन्तु उस मुस्किराहट में क्या छिपा हुआ था यह वही जाने।

(२)

हमारा जहाज बम्बई के निकट आ चुका था। आज हम पांच वर्ष बाद स्वदेश लौट रहे थे। १६४० के मार्च मास में हम लोग योरोप भेजे गये थे, तबसे निरन्तर युद्ध में निरत रहे।

ज्यों ज्यों बम्बई समीप आ रहा था, मेरा हृदय धड़क रहा था। हृदय का वह बल जो विजय के आनन्द से प्राप्त हुआ था, शनैः शनैः कम हो गया था—एक भयङ्कर कालिमामयी आशंका से मन कांप रहा था और मुख सूखा जा रहा था और नेत्रों से अपने आप अश्रुधारा बहने के लिए जोर मार रही थी। इस समय स्वदेश, जाना बूझा हुआ देश, चिर

परिचित, जन्मभूमि भयावह प्रतीत हो रही थी। मन कह रहा था कि जहाज की गति बम्बई से प्रतिकूल दिशा की ओर हो जावे, और उससे हम उत्तरोत्तर दूर होते चले जावें।

मैं डेक पर खड़ा हुआ था। मेरे मित्र ठाकुर अर्जुनसिंह ने हँस कर कहा—"सरदार, अब हम विजयी होकर लौटे हैं। देखो हमारे स्वागत के लिए कितने नर-नारी इकट्ठा हुए हैं। अब हम बहुत जल्द अपने परिवार से मिलेंगे।" मेरा गला भरा हुआ था। मैं कुछ बोल न सका।

अर्जुनसिंह ने मेरा उत्तर न पाकर मेरी ओर शङ्कित दृष्टि से देखते हुए कहा—"सरदार, यह क्या तुम्हारे नेत्र घुचघुचाए हुए हैं। अरे समझा यह आंसू हर्ष के हैं!" यह कह कर वह जोर से हँस पड़ा।

मैं फिर भी उत्तर न दे सका। हृदय का तूफान हृदय को ही मसोस रहा था।

अर्जुनसिंह ने मुझको अपनी ओर घसीटते हुए कहा—"सरदार, क्या है, आज यह उदासी! तुम हँसते नहीं! अरे ..अरे . बात क्या है?

मैंने अपने मन का आवेग दमन करते हुए कहा—"भाई कुछ नहीं। मैं यह सोच रहा हूं कि मेरा अवसान युद्ध-क्षेत्र में क्यों नहीं हुआ।

सदैव से अलमस्त रहने वाला अर्जुनसिंह जोर से हस पड़ा। अरे हमीं लोग तो इसको आजाद करेंगे। जब हमने दूसरे देशों को आजाद किया है तब क्या अपना देश आजाद न कर सकेंगे? कापुरुषों की तरह रोना अच्छा नहीं। सैनिक जीवन रोना नहीं हँसना सिखाता है।

मैंने उत्तर दिया—"ठीक है, किंतु सत्य कल्पना से कितना अधिक कठोर है, यह भी जानते हो?"

अर्जुनसिंह ने हँसते हुए कहा—"क्यों नहीं, सैनिक सदैव सत्य से ही सामना करता है। सिपाही का संघर्ष कठोर सत्य से होता है।

मैंने दूसरी ओर मुख घुमाते हुए कहा—"मुँह से कहना सरल है किन्तु...।"

अर्जुनसिंह—हम भारत को आजाद करेंगे, किन्तु सशस्त्र मार्ग से नहीं। वह पाशविक बल है। भारत ने आज तक पाशविक बल को ही अपनाया था, इससे वह आज उस बल के समक्ष लाचार है, वशीभूत है किन्तु आत्मिक बल ही सच्चा बल है। हमारा आत्मिक निश्चय है कि हम गुलाम न रहेंगे। हमारी सफलता साधना होगी, और फिर कोई शक्ति हमको अपना गुलाम नहीं बना सकती।" बकवास में अपना बल क्षीण न करो। कुछ अवकाश मिला है इसमें हँस लो, खेल लो, और फिर कर्त्तव्य के लिए सन्नद्ध हो जाओ। यही सच्चे सिपाही का जीवन है।

यह कह कर वह मुझे घसीटता हुआ बाहर निकलने के मार्ग की ओर ले चला। जलयान समुद्र तट पर पहुंच चुका था। चारों ओर एक तुमुल ध्वनि छायी हुई थी। यह विजय का आनन्द था, विजय का स्वागत था। कैन्टीन खुली हुई थी। नाना प्रकार के भोजन मुक्तहस्त से वितरण हो रहे थे, चाय देवी की आराधना जोरों से जारी थी। किन्तु न जाने क्यों मेरा मन अब भी उदास था, और किसी ओर आकर्षित न होता था।

अर्जुनसिंह ने फूलों की माला मेरे गले में डालते हुये कहा—"सरदार, आज कितने आनन्द का दिन है, तुमने तो 'जार्ज क्रास' जीता है, वीरों में अग्रणी हो, आओ, आज तुम्हें हृदय से लगा लूँ।"

मैंने हँसने की चेष्टा करते हुये कहा—"भाई यह गुलामी का नृत्य है। गुलाम का हृदय अपने स्वामी का होता है, इस नाते चाहे भले ही हम आनन्द मना लें।

अर्जुनसिंह ने मुझे हृदय से चिपटाते हुये कहा—"किन्तु फिर भी हमारी विजय है। हँसो, हँसो, कुछ सोचो नहीं, कुछ विचारो नहीं। केवल हँसो और कुछ नहीं।

अर्जुनसिंह ने योरोप में रह कर पश्चिमीय नृत्य-कला सीख ली थी, वह मुझको लेकर उस विशाल प्रांगण के एक कोने में नृत्य करने लगा। दूसरे सैनिक करतल-ध्वनि से हमारा उत्साह बढ़ाने लगे।

(३)

बलिया के समीप 'हथुआ' नामक ग्राम मेरी जन्म-भूमि है। मैं ज्योंही स्टेशन पर उतरा मेरा कुछ दिनों से धड़कने वाला मन अधीर होने लगा। जले हुए स्टेशन को देखकर माथा ठनका। चारों ओर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। दिन रहते हुए भी रात्रि की भयंकरता भासित होती थी। स्टेशन पर उतरने वाले व्यक्तियों की संख्या केवल दो थी। एक मैं था, और एक दूसरा मलिन वस्त्रों का पुञ्ज बना हुआ अभागा दिहाती।

मेरे साथ मेरा सामान बहुत था। यहां पर पहले कुलियों की कोई कमी न थी, किन्तु आज कहीं किसी ओर कोई दिखाई न पड़ता था। मैंने उस ग्रामीण को अपनी ओर आने का संकेत किया। पहले वह ठिठका, और फिर कम्पित पगोंसे मेरे पास आकर जिज्ञासा भरी दृष्टिसे देखने लगा।

मैंने पूछा—"यहां कोई बैलगाड़ी नहीं दिखाई पड़ती? इतना सूनापन क्यों है, कुछ समझ में नहीं आता।"

ग्रामीण ने मेरी ओर चकित दृष्टि से एक बार देखा भर, और कुछ उत्तर नहीं दिया।

मैंने फिर कहा—"हथुआ की गाड़ियां पहले बहुत आया करती थीं, लेकिन आज एक भी नहीं दिखाई देती।"

ग्रामीण ने मेरी ओर बड़ी विकलता से देखा। उसने कहा—क्या आप लाम पर गये थे? अभी आज ही आये हैं क्या?"

मैंने सिर हिलाकर उसकी बात को सकारा।

"आपका घर किस गांव में था?"

"मैं हथुआ का रहने वाला हूँ। तुम किस गांव में रहते हो?"

"पहले हथुआ में ही रहता था, अब कानपुर के एक मिल में काम करता हूँ। इधर कई महीने से मेरे घर वाली बीमार हैं, वह अपने मायके में हैं, उसी को देखने जाता हूँ। उसका घर भवानीगञ्ज में है। विजय दिवस की छुट्टियों में ससुराल जा रहा हूँ।" यह कह कर वह हँस पड़ा।

"भवानीगंज तो यहां से सात-आठ कोस है, और तुम्हें हथुआ हो कर जाना पड़ेगा। जरा सूबेदार रामसिंह के घर होते चले जाओ, और वहां कह दो कि माधोसिंह लड़ाई से वापस आ गया है।" ग्रामीण ने मेरे समीप आकर मुझको ध्यान पूर्वक देखते हुए कहा—"माधो भाई, अब तुमको पहचाना। बड़ी देर से तुमको देखकर मन ही मन कह रहा था कि जैसे कहीं तुमको देखा है, मगर तुम्हारे साहबी ठाठ को देखकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। क्या तुम मधुसूदन को भूल गये, जिसके साथ रात दिन लड़कपन में खेला करते थे।"

मैंने उसको अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"मधुआ, तू कहां से टपक पड़ा। और बताओ अच्छे तो हो। हां, तुम तो कानपुर में नौकर हो। घर कब से नहीं आये।"

मधुसूदन ने उत्तर दिया—"घर आकर क्या करूं? अब यहां क्या है? हथुआ अब गांव नहीं रहा, वहां तो अब खेत हैं। उसके अधिवासी या तो सब मार डाले गये, या कैद हैं और या कहीं अज्ञात स्थान को भाग गये हैं। सन् बयालीस में यह गांव जड़ मूल से उखाड़ दिया गया। भैया तुम्हारे घर का भी निशान बाकी नहीं है। वहां पर भी हल चलवा दिया गया है। तुम्हारे पिता ठाकुर और तुम्हारे चाचा दोनों मार डाले गये। उनके मरने के बाद तुम्हारी घर वाली ने तो साक्षात् दुर्गा की तरह शस्त्र धारण कर हम लोगों का नेतृत्व किया। उस क्षत्राणी की मार से अंग्रेज सिपाही प्राण बचाते फिरते थे। एक नहीं दो बार उनकी फौज को उसने भगा दिया, लेकिन उनके हवाई जहाजों के सामने हम अशक्त थे। उन्होंने जब सामने लड़कर अपनी जीत होते नहीं देखी, तब वायुयानों से बम के गोले बरसाने लगे और उसमें सब के सब मारे गये। तुम्हारी घर वाली लड़ती-लड़ती खेत रही, तुम्हारी माता और चाची को वे लोग पकड़ कर ले गये और बड़ी दुर्दशा से उन्हें मारा। भैया, हमारा हथुआ उजड़ गया और तुम्हारा सारा घर ही उजड़ गया।"

मेरे मुंह से केवल इतना निकला—"तो सब कुछ नष्ट हो गया।"

मधुसूदन ने आंसुओं को पोंछते हुए कहा—"हां भाई सब नष्ट हो गया। एक मैं बचा हूं, जो तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। हथुआ की जमीन सब को निगल कर शून्य के साथ ताण्डव नृत्य कर रहा है। भाई दुखी मत हो,

तुम्हारी घर वाली की स्मृति में आज भी हम लोग आंसू गिराते हैं। सत्य ही वह मनुष्य नहीं, मनुष्य योनि में कोई देवी थी, जिसने अपनी जाति का, और अपने देश का नाम उज्ज्वल किया है। उठो, हताश न हो। तुम्हारे सामने प्रतिशोध है और जो मर चुके हैं, उनके प्रति कर्त्तव्य है।

इसी समय एक वायुयान का सन्नाटा सुनाई दिया। हमारे नेत्र स्वतः ऊपर को उठ गये। कागजों का पुलिन्दा बिखेरते हुए वे जा रहे थे।

मधुसूदन जो मेरे ही पास भूमि पर बैठ गया था कहने लगा—"जानते हो यह क्या है? 'विजय का दिन' मना रहे हैं। आकाश से पुष्पों की नहीं, पत्रों की वर्षा कर रहे हैं। इन पत्रों पर लिखा है—"पाशविकता पर मनुष्यता की विजय हुई है?'

एक दीर्घ निश्वास के साथ मेरे मुंह से सहसा निकल गया—"या मनुष्यता पर पाशविकता की विजय हुई है?"

मेरी आँखों के सामने अन्धकार छा गया और मैं अचेत होकर मधुसूदन की गोद में गिर पड़ा।

मरण के उपरांत

लाशों पर लाशें गिर रही थीं। उनके जख्मों से बहता हुआ खून उनके जोश को सदा के लिये ठण्डा कर रहा था। इन्सान कहलाने वाले हैवानों का वह झुण्ड अपने पैशाचिक ताण्डव में इतना व्यस्त था कि उसे अपने-पन का ज्ञान नहीं था। अपने अस्तित्व को वह शैतान के हाथों बेंच चुका था और शैतान अट्टहास के साथ उनको अपने ही प्रतिरूप में गढ़ रहा था। नाश के सभी उपकरण वहाँ पर अपने ज्वलन्त रूप से वर्तमान थे। आकाश को चूमती हुई लपटें मानवता को मिटाती हुई चली आ रही थी। चारों ओर छाया हुआ धूम अपनी कालिमा की चादर के नीचे मानवता के पशुत्व को छिपाने का प्रयत्न-सा कर रहा था।

एक स्थान पर लाशों का ढेर कुछ ज्यादा था, जो इस बात की सूचना दे रहा था कि यहां जम कर लड़ाई हुई थी। खेत आने वाले जवानों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। मरने के बाद उन दोनों का भेद शायद मिट गया था, क्योंकि दोनों एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिलाकर पड़े थे। यदि जिन्दगी ने उन्हें बर्बर पशु-सा जघन्य बना रखा था, तो मृत्यु ने उन्हें फिर इन्सान में परिणत कर दिया था।

धीरे-धीरे अग्रसर होती हुई अग्नि की लपटें अपनी उष्णता से उन ठण्डी लाशों को पुनः जीवन प्रदान करने का प्रयत्न कर रही थी। अन्त में

उन्हें सफलता मिली। खून से लथपथ एक लाश में जीवन का संचार हुआ। उसने एक करुण कराह के साथ अपने नेत्र खोले। उसी समय पास ही पड़ी हुई एक दूसरी लाश में भी प्राण संचार हुआ। उसने भी अपने नेत्र खोले। दोनों की आंखें चार हुईं। दोनों ने एक दूसरे को पहचाना। उनमें एक हिन्दू था और एक मुसलमान। दोनों एक दूसरे को पहचानते थे। एक ही मुहल्ले में रहते थे। लड़कपन में दोनों साथ-साथ खेले-पढ़े थे, दोनों एक दूसरे के विवाह में सम्मिलित हुए थे और दोनों एक ही जगह काम करते थे। उनमें से एक का नाम जफर था और दूसरे का नाम कामता।

लेकिन आज उनकी दृष्टि में वह प्रेम नहीं था, वह विश्वास नहीं था। दोनों एक दूसरे के प्रति आशंकित थे। दोनों लड़ते हुये गिरे थे।

अतीत की स्मृति ने चुटकियां लीं, और दोनों ने अपने अपने नेत्र पुनः खोले। एक दूसरे के प्रहार से हैवानियत मर चुकी थी और शुद्ध मानवता अपने प्रखर रूप में पुनः जीवित हुई।

जफर ने कराहते हुए कहा—"कामता, भाई।"

कामता के मन का मैल उसकी आंखों के बहते हुए पानी ने धो दिया। लड़कपन की घटनाओं ने उसके सामने आकर उसे धिक्कारना आरम्भ किया। उसके मुंह से केवल यही निकला—"हां, भाई जफर।"

मन की परेशानी को आंखों की करवटों में छिपाने का प्रयत्न जफर करने लगा और कामता एक गहरी सांस के पेंदे में अपने मन के तूफान को डुबा देने का!

जफर—"भाई प्यास लगी है।"

कामता ने उठकर बैठते हुए कहा—"अब भी थोड़ी ताकत महसूस करता हूँ। तुम पड़े रहो भाई, मैं जाकर कहीं पानी तलाश करता हूं।,'

जफर की सांस घरघराने लगी। उसने कहा—"भाई, क्या मेरे लिये इतनी तकलीफ करोगे ?

"क्यों नहीं ! आखिर मैं भी तो इन्सान हूं।" कामता अपना अन्तस्तल देखने लगा।

जफर ने काँपती हुई आवाज से कहा—"कामता, मैने तो तुम्हारा सर्वनाश किया है। तुम्हारे बीबी-बच्चों को मैंने ही मरवाया है।"

कामता के हृदय में एक मसोस उठी। उसके घाव ताजे हो गये। मूर्छा ने जिन्हें भुला दिया था, वे फिर सजग हो गये।

जफर कहने लगा—"मुझे एक बूंद पानी के लिये तड़प कर मरने दो। आह ! जरा महसूस करने दो कि बेगुनाहों को सताने का ऐसा मजा होता है। कामता तुम्हें याद है, मैं तुम्हारी शादी में गया था। तुम्हारी बीबी को मैं भौजाई कहा करता था। जब कभी तुम्हारे घर जाता तो वे मेरे लिये एक से एक अच्छा खाना बनाकर भेजती। मेरे••••••।"

कामता ने बात काट कर कहा—"जफर उन बातों के याद करने से क्या फायदा है ?"

जफर ने आंसुओं को पीते हुए कहा—"फायदा कैसे नहीं है ? मैंने अपनी रूह को शैतान के हाथ बेच दिया था, अब उसे वापस छुड़ा रहा हूं।"

कामता चुप होकर बैठने का प्रयत्न करने लगा।

जफर कहने लगा—"वह दिन भी याद आता है जब हमारा और

तुम्हारा रास्ता दो तरफ फट गया। मुझे बताया गया कि मैं मुसलमान हूं और तुम्हें बताया गया कि तुम हिन्दू हो। लेकिन हम दोनों आखिर में इन्सान हैं यह भूल गये। तुम हिन्दुओं का सङ्गठन करने लगे और मैं मुसलमानों का। तुमको मेरी सूरत से नफरत हो गई और मुझको तुम्हारी से। पागल भैंसों की तरह हम एक दूसरे से लड़ने के लिये उतावले हो गये। मुहब्बत के जज्बे को अपनी कमजोरी समझने लगे और आखिर...।' जफर का गला रुंध गया।

कामता रोने लगा। उसने कहा—"मैं भी तो वैसा ही हो गया था भाई।"

जफर कराह उठा। वह कहने लगा—"तुम फिर भी अच्छे रहे। तुमने मेरे बीवी बच्चों को तो मौत के घाट नहीं उतारा?"

कामता ने उत्तर नहीं दिया।

जफर—"खुदा ने तुम्हें उस गुनाह से बचा लिया, लेकिन मैं तो डूब गया। तुम्हारी मासूम बच्ची का खून मेरे हाथों में लगा हुआ है। उस पागल शैतानी भीड़ ने जब तुम्हारे घर पर हमला किया और तुम्हारे बीवी बच्चों को घसीट लाई तो मैं वहां मौजूद था। भौजाई को एक शैतान ने भाले से छेद डाला और तुम्हारी लड़की गुलाब चिल्ला उठी। मुझे देखकर उसने कहा—"चाचा अम्मा को बचाओ।" मैं हँसने लगा। मेरे कुछ कहने के पहले ही एक दूसरे शैतान ने उसको तलवार के घाट उतार दिया। तुम्हारे घर को लूटने के लिये मैं आगे बढ़ गया। कामता! अगर मैं चाहता तो तुम्हारी बीवी को बचा लेता। तुम्हारी बच्ची को उनसे छीन लेता। आह, एक घूंट पानी।"

कामता ने आंसुओं को दबाते हुये कहा—"पानी कहीं से लाऊंगा, तुमको प्यासा नहीं मरने दूंगा।"

जफर—"नहीं मेरे लिये पानी मत लाओ। प्यास से तड़पने में मुझे बड़ा आराम मिल रहा है। पानी की तड़पन मुझे इन्सान बना रही है, पानी पी लेने से शायद फिर शैतान बन जाऊं।

कामता के घाव ताजे होकर चिल्लाने लगे। उसने कहा—"जफर भूल जाओ उन बातों को भूल जाओ।"

जफर ने एक लम्बी साँस ली। वह फिर कहने लगा—"भूल जाऊंगा, दो मिनट बाद भूल जाऊंगा। फिर तुमसे कहने न आऊंगा। हां, तुम्हारे घर को लूटकर बरबाद कर दिया। तुम मुहल्ले के दूसरे हिन्दुओं को निकालने गये हुए थे और इसी दर्म्यान तुम्हारा सर्वस्व नाश करके मैं तुम्हारी खोज में निकला। तुम जब उनको लेकर जा रहे थे, मैंने तुम्हें घेर लिया। तुम्हारे साथी हिन्दुओं ने भी लोहा लिया। आखिर मैं तो तुम तक न पहुंच पाया, बीच ही में किसी ने मार दिया। मै गिर पड़ा और तुम्हारा क्या हाल हुआ नहीं जानता। जब आंख खुली तो तुमको देखा और पहचाना।"

कामता—"बीवी-बच्चों के मरने की खबर सुन चुका था। जो मर चुके थे उनके लिये रोने से कोई फायदा नहीं था। मेरी तरह से जो दूसरे मुसीबत में घिरे हुए थे, उनको बचाना ही परम धर्म था। अफसोस, मैं उनकी भी रक्षा नहीं कर सका। भाई, अब मुझमें भी शक्ति नहीं रही। खून मेरे घावों से निकल चुका है। प्यास से मेरा भी गला सूख रहा है। आग की लपटें उठ रही हैं, यह झुलस अब सही नहीं जाती।"

जफर ने कामता का हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया।

कामता भी वहीं दर्दनाक कराह के साथ गिर पड़ा।

जफर ने उसके पास खिसकने का प्रयत्न करते हुए कहा—"भाई कामता आओ हम दोनों फिर एकबार चिपट जावें, जैसे होली के त्योहार में हम दोनों कभी एक दूसरे की भुजाओं में समा जाते थे। देखो वह होली जल रही है। आओ इसमें हम अपनी हैवानियत को, शैतानियत को जला दें। शायद इसीलिये तुम्हारे यहां होली का त्योहार बनाया गया है। होली जलाने के बाद गले मिलकर मुरझाई हुई इन्सानियत को ताजा करते हैं। वैसे ही हम भी अपनी दोस्ती को जिन्दा करें।"

कामता बेहोश हो गया था। उसने सुना या नहीं, कौन जाने? जफर खिसककर कामता के पास पहुंच गया। उसने उसे टटोल कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहा, परन्तु कामता बेसुधी की दुनिया में था।

जफर ने कराहते हुए कहा—"कामता, कामता! बोलो, मेरे गुनाह मुझे जला रहे हैं। मुझे······।"

इसके आगे वह न कह सका। आग की लपटें उन दोनों को निगलने के लिये तेजी से बढ़ने लगीं।

जफर ने गों गों करते हुये अस्पष्ट स्वर में कहा—पा···आ···आ···नी पा···आ···आ···नी!"

अग्नि की लपटें कड़क कर कहने लगीं—"धू-धू, जल-जल।"

जफर चिल्लाता ही रहा—पानी, पानी! मगर उसके स्वर को उन्होंने नहीं सुना और उनको निगलने के लिये अपनी लाल-लाल जीभ को बाहर निकाल कर उनका रसास्वादन करने के लिये लालयित हो उठी।

जफर ने आखिरी प्रयत्न किया। कामता ने भी जोर मारा। दोनों की पुरानी दोस्ती ने भी जोर मारा। एक दूसरे को उन दोनों ने अपनी छाती से लगा लिया। हैवानियत का घर—दोनों का शरीर जलने लगा।

*   *   *

जब आग बुझाने वाले आये, और वह बुझाई गई तो उन लोगों ने दो झुलसे हुए किन्तु पहचाने जाने वाले दो मनुष्यों को एक दूसरे से लिपटे हुए देखा। वे जफर और कामता के शव थे।

एक ने कहा—"देखो, किस तरह आपस में लड़ते हुए मर गये हैं।"

दूसरे ने कहा—"नहीं, ये लड़े नहीं, बल्कि हृदय से। हृदय मिलाये हुए हैं। मालूम होता है कि दोनों अपनी हैवानियत को जलाकर इन्सानियत के दायरे में घुस रहे हैं।

पानी की धार कामता और जफर को पानी पिलाने का प्रयत्न करने लगी।

स्नेह बन्धन

उमड़ते हुए आंसू क्षण भर के लिए रुक गए, और जुलेखा की हिचकियां भी स्तंभित होकर सहम सी गई। उसने खिड़की बन्द कर दी। मार–काट का दृश्य, शैतान का नग्न नर्त्तन उसकी आंखों से छिप गया परन्तु आहतों का चीत्कार प्राणियों की त्राहि त्राहि की कातर ध्वनि उसके कानों में बराबर आ रही थी। उसका हृदय मसोस, मसोस कर उसे भय विह्वल कर रहा था। उसका मन न माना, और वह फिर खिड़की खोल कर बाहर खून की होली देखने लगी। पड़ोस के एक घर पर उसकी आखें टंग गईं। यह उसका चिरपरिचित घर था, जहां अपने बाल्य काल में वह निर्भीक होकर जाया करती थी। यह उसकी सहेली यमुना का घर था। उसका हृदय बड़े बेग से घड़कने लगा। बाहर की सांस अन्दर न समा सकी। पिशाचों का वह दल अपनी पैशाचिकता में मत्त था। उनका केवल खून बहाना ही ध्येय था। छोटे-बड़े, स्त्री बच्चे, अपाहिज मुमूर्षु कोई भी बच नहीं रहा था, सभी का खून, शैतान बिना किसी हिचकिचाहट के पीने में तल्लीन था। जुलेखा की हौल दिली ने उसे फिर खिड़की बन्द कर देने के लिए मजबूर किया। वह सिसक सिसक कर रो रही थी। उसके मन से किसी ने आर्त्तस्वर में पूछा—"बेचारी यमुना का क्या होगा?"

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये उसने फिर खिड़की खोली,। उसने

देखा कि वह शैतानी भीड़ उसके दरवाजों को तोड़ने में संलग्न है। मिट्टी का तेल फव्वारे से छिड़का जा रहा है और एक जलती हुई मशाल से उसमें आग लगा दी गई। दरवाज़ों की लकड़ी को शैतान तेजी से जलाने लगा। पिशाचों की वह भीड़ कर्कश स्वर में हँसने लगी। अट्टहास अग्नि की लपटों को कम्पित करने लगा। लपटें भी सहम कर उन दरवाजों के छिद्र से भीतर घुसकर अपने त्राण का उपाय सोचने लगीं। जुलेखा वह दृश्य न देख सकी। उसने फिर खिड़की बन्द कर दी।

बाहर का कृत्य बंद नहीं हुआ था आंख मिलते मिलते वह पुराना दरवाजा जलकर बुरी तरह गिर पड़ा। कुल्हाड़ों के प्रहारों ने उसे धराशायी कर दिया। भीड़ अन्दर घुसी। शैतान की दम फूलने लगी थी, उसने भी क्षण भर के लिए विश्राम लिया। जुलेखा ने खिड़की फिर खोली।

उस भीड़ का एक युवक एक बालिका को घसीटता हुआ बाहर ला रहा था। युवक खून से शराबोर था। उसके हाथ में खून से भरी हुई तलवार थी। बालिका की आंखें बन्द थीं। कलचालित पुतली की भाँति उसके साथ साथ घसिटती हुई वह चली आ रही थी। जुलेखा अपनी आंखों को मसल कर स्पष्ट देखने का यत्न करने लगी। उसने पहचाना कि वह युवक उसका भाई अब्दुल्ला था, और वह बालिका उसकी सहेली यमुना थी।

जुलेखा के हृदय में एक टीस उठी। वह अस्थिर हो उठी। उस दिन की घटना उसे बरबस याद पड़ने लगी। पिछले साल चैत्र के महीने में वह चेचक से बीमार हुई थी। आबलों से सारा शरीर भर गया था। जलन से वह छट पटा रही थी। उसकी पीड़ा से सभी व्याकुल थे। यह अब्दुल्ला भी सिरहाने बैठा सान्त्वना दे रहा था, किन्तु उसकी जलन में कोई अन्तर

नहीं पड़ता था प्रवल ज्वर से उसका शरीर जला जा रहा था। बेसुधी उसके लिए सबसे मूल्यवान वस्तु थी। वह उसी की गोद में पड़ी डूब-उतरा रही थी। ऐसी ही अवस्था में उसे ज्ञात हुआ कि मानों उसको किसी ने शीत-गृह में लाकर बैठा दिया है। उसके आबलो ने करवट बदली क्षण भर के लिये उस ने शीतलता अनुभव की, उसके नेत्र अपनेआप खुल गये। उसने देखा कि वह युमना थी। वह हरी हरी दूब से कोई शीतल लेप उन आबलों पर लगा रही थी। ठंडक के भूखे फफोले उसको पीने के लिए लालायित हो उठे। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। किन्तु युमना ने अपना हाथ प्रेम के एक हल्के झटके के साथ छुड़ा लिया! वह फिर शीतल निर्माल्य उसके शरीर पर लगाने लगी। उसे याद पड़ा कि उसने कहा था—"युमना यह अछूत की बीमारी है, तू यहां क्यों आई?" यमुना ने उत्तर दिया था—"जुलेखा तेरी पीड़ा तो मेरी पीड़ा है। दोस्त क्या छूत-अछूत का विचार करते हैं। तेरे लिये अम्मा ने निर्माल्य भेजा है। जब से तू बीमार पड़ी है तब से वे देवी की पूजा कर रही हैं और आज यह निर्माल्य भेजा है कि मैं जा कर तेरे शरीर पर लगा आऊँ। उससे तुझे शान्ति मिलेगी।"

मैंने कहा थ—"मैं मुसलमान हूं, अछूत हूं, तुम्हारी कौन हूँ जो इतनी तकलीफ कर रही हो।"

यमुना ने कहा—"मुसलमान भी आदमी हैं, अछूत भी आदमी हैं। भगवान की सृष्टि में सब बराबर हैं। छुआ-छूत की दीवालों को खड़ा करने वाले हम लोग हैं। और जुलेखा आदमी के अलावा हम एक दूसरे के पड़ोसी हैं। भाई बन्धु से भी अधिक निकट हैं। महज धर्म की विभिन्नता तो हमें जुदा नहीं कर सकती।"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। यमुना बड़े प्रेम से फफोले सहला सहला कर उनकी अग्नि को शांत कर रही थी। मेरी आंखें बन्द हुई जा रही थीं। इसी समय मैंने अब्दुल्ला को बिलख कर कहते हुए सुना—"यमुना बहन, अगर मेरी जुलेखा अच्छी हो गई तो मैं इसका अहसान जन्म भर नहीं भूलूंगा। जुलेखा को मैंने पाल पोस कर बड़ा किया है। मां-बाप के मरने के बाद दोनों का फर्ज मैंने ही अदा किया है। अपनी जिन्दगी देकर इसको बचाने के लिये तैयार हूँ।" कहते कहते उसकी आंखें भीग गई थीं गला भरा गया था।

यमुना ने मेरी आंखें दूब से सहलाते हुये कहा—"भैया, क्या जुलेखा अकेले तुम्हारी ही है, तुम तो शाम को आते हो, मगर इसका सारा दिन तो हमारे घर में बीतता है। मेरी बीमारी से शायद अम्मा को इतनी चिन्ता न होती जितनी जुलेखा की बीमारी से है। भैय्या, बहन को तो भाई का आशीर्वाद चाहिए अहसान नहीं।"

अब्दुल्ला लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगा था।

यमुना के अनवरत परिश्रम और प्रेम से ही उसने जीवन लाभ किया था। चेचक तो अच्छी हो गई थी, परन्तु इसके अवशेष चिन्ह-दाग अब भी उस बीती हुई घटना की याद दिला रहे थे। आज उसी अपने भाई के कुकृत्य को देख कर वह कांप उठी। उसके मन में हजारों बिच्छुओं ने डंक मारना आरम्भ कर दिया। उसके मन ने कहा—तेरा भाई शैतान हो गया है।" बाहर भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"अब्दुल्ला, क्या इसको अपनी दुलहन बनायेगा?" जुलेखा यह सुन कर सहम उठी। उसकी आंखें बन्द हो गईं। बाहर शैतानों के झुण्ड ने फिर कहा—"नहीं, यह काफिर है, यह नजिस है, सुअर की तरह नापाक है। मेरी तलवार ठंडी हो गई है, इसके गर्म लहू में

उसे नहलाने दो।" जुलेखा अब अपने को न रोक सकी वह सब भूल गई। अपने भाई को उस पाप कर्म से रोकने के लिये वह आतुरता के साथ घर के बाहर जाने का मार्ग ढूंढ़ने लगी। अब्दुल्ला ने अपने घर का दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया था। बाहर निकलने के सब मार्ग अवरुद्ध थे। हार कर फिर उसे फिर खिड़की के सामने आना पड़ा। उसने देखा अब्दुल्ला उसकी सहेली को घसीट रहा है। वह चीत्कार कर उठी। शैतानों के उस तुमुलनाद को भी उसके आकुल रव ने स्तम्भित कर दिया। अब्दुल्ला की आंखें बरबस अपने घर की खिड़की को देखने लगीं, जहां जुलेखा खड़ी थी।

जुलेखा ने कहा—"जिसे तुम पकड़े हो वह यमुना नहीं है, वह मैं हूँ।"

अब्दुल्ला उसकी बेबसी पर हँसा। शैतान भी लज्जित हो गया। यमुना की आंखें बन्द थीं। वह यमुना थी कि उसका शव, यह कौन कह सकता था।

जुलेखा ने फिर चिल्ला कर कहा "भैया, यमुना को मेरे पास ले आओ नहीं तो………!"

अब्दुल्ला के कहने के पहले ही एक दूसरे शैतान ने कहा—"तू चुप रह, खिड़की बन्द कर ले नहीं तो मारे तमाचों के ठीक कर दूंगा।"

जुलेखा के मन ने विद्रोह भरे स्वर में कहा—"तू भी स्त्री है। यमुना की तरह है। काश, तुझे हिन्दुओं की पागल भीड़ ने पकड़ लिया तो...!"

जुलेखा आगे उसकी भर्त्सना को न सुन सकी। उसकी दृष्टि कमरे में रखे हुये एक भाले पर गई, आज सुबह ही अब्दुल्ला ने उसके फल पर सान धरी थी। जुलेखा ने उसे उठा लिया। उसके मन में एक भीषण साहस का संचार हो रहा था! कोई उसके मन में बार बार पुकार मचाकर कह रहा था—"यमुना भी तेरी तरह इन्सान है, और वह भी तेरी ही

भांति एक अबला है। तेरी बीमारी में तेरी रक्षा के लिये यमुना ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी! उसका बदला तेरा भाई इस प्रकार दे रहा है।"

उसने दूसरे ही क्षण भाला उठा लिया और तौल कर उसने खिड़की के बाहर फेंक ही तो दिया। जुलेखा अपने कार्य का परिणाम देखने के पहले ही उसी खिड़की से यमुना की रक्षा करने के लिये कूद पड़ी। उधर भाले ने अब्दुल्ला को छेद कर धराशायी किया, और यमुना भी उसी के समीप गिर पड़ी थी। जुलेखा भी कूदकर उसके समीप ही बेहोश पड़ी थी।

इसी समय कुछ दूर पर बन्दूकों की गड़गड़ाहट से आकाश कांप उठा। दूसरे ही क्षण वह फीड़ तितर वितर हो गई। शैतान ने कमर खोल कर विश्राम लेने की अनुमति दी। उसके सैनिक अपने घरों में घुस गये। सड़क में सन्नाटा छा गया।

मकानों को जलाता हुआ धूम उन्हें अपने अंक में छिपाने का प्रयत्न करने लगा।

उत्तेजना जुलेखा की बेहोशी दूर करने लगी उसने यमुना का हाथ पकड़ कर कहा—"बहन यमुना,"

यमुना ने कोई उत्तर नहीं दिया। जुलेखा उसे हिलाने डुलाने लगी। यमुना ने फिर भी आंखें नहीं खोली। इसी समय अब्दुल्ला की कराहट ने उसका ध्यान अपनी ओर खींचा। जुलेखा के हृदय में भाई के प्रेम ने जोर मारा वह उसकी ओर देखने लगी।

अब्दुल्ला ने कराह के साथ पूछा—"यमुना महफूज तो है! मुझे अपने मरने का कोई गम नहीं है। अगर गम है तो बस यही कि तूने भी

मेरा अविश्वास किया उन शैतानों के पंजे से छुड़ाने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं था। मैं उसको अपनी बीवी बनाने के बहाने से अपने घर ला रहा था। आखिर मैं भी तो इन्सान हूँ, बिलकुल हैवान नहीं हूं। अगर तुझको भूल जाता तो यमुना को भी भूल जाता।"

कहते कहते उसकी आंखें उलटने लगी! जुलेखा का हृदय चीत्कार कर उठा। धूम की काली चादर को फाड़ती हुई लपटें उसे झुलसाने लगीं। जुलेखा ने अपनी आंखों को दोनों हाथों से ढक लिया। वह फिर बेहोश होकर गिर पड़ी।

फौजी जवानों का एक दस्ता उधर से निकला। ड्राइवर बड़े वेग से मोटर लिए जा रहा था। अग्नि की लपटें उस दृश्य को दिखा कर उसे रोकने का संकेत करने लगी। फौजी जवानों ने उतर कर देखा दो बेहोश औरतें थीं और भाले से बिंधा हुआ एक नवयुवक था। तीनों के प्राण अभी अवशेष थे या नहीं? कौन जाने!

फौज के एक जवान ने कहा—"इनमें से एक हिन्दू लड़की मालूम होती है और दूसरी मुसलमान। भाले से विधा हुआ जवान भी मुसलमान मालूम होता है।

दूसरे ने उनकी परीक्षा करने के बाद कहा—"तीनों मुर्दा हैं, उठा कर इसी आग में फेंक दो।"

उन्होंने निर्ममता के साथ फेंक दिया। अग्नि ने उन्हें अपनी गोद में लोक लिया। जलती हुई यमुना और जुलेखा की लाशों की लपटें एक दूसरे को स्नेह से बांधने का प्रयत्न कर रही थीं, और अब्दुल्ला का शव भाले से लिपट कर पृथ्वीतल में अपने को छिपाने का प्रयत्न कर रहा था।

एक ही पथ के पथिक

उधर मशीनों की गड़गड़ाहट से मील की इमारत कांप रही थी और इधर ठकुरी का हृदय फटा जा रहा था अपने मन की आर्त-पुकार से। दोनों तुमुलनाद कर रहे थे, अन्तर केवल यही था कि एक ध्वनिपूर्ण था और दूसरा मौन, एक निर्जीव किन्तु चलित मशीनों के कल–पुर्जों का था और दूसरा सजीव किन्तु पुर्जों की तरह स्थिर मजदूर का था। एक का भावहीन और निर्मम था और दूसरे का ममत्वपूर्ण था, जिसकी ओट से मानवता झांक रही थी।

ठकुरी उस दिन कुछ ही नहीं, बहुत चिन्तित था। वह उस दिन अपनी एकमात्र सन्तान 'झुन्नू' को मौत से लड़ने के लिये अकेला ही छोड़ आया था। झुन्नू की दशा कई दिनों से खराब थी। निमोनिया जैसे भयंकर शत्रु से लड़ते–लड़ते वह थक–सा गया था और वह अपनी आंखें बन्द किये हुए कुछ आराम कर रहा था जब ठकुरी अपने घर से उसका भार अपनी स्त्री महदेई को सौंप कर ड्यूटी अदा करने के लिये आया था। महदेई ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसको मील जाने के लिये मना किया था और वह स्वयं भी जाने के लिये उत्कण्ठित नहीं था, किन्तु परिस्थिति उसको विवश कर रही थी। उस दिन वेतन बटने वाला था। पन्द्रह दिनों का वेतन था, यदि

उस दिन मील से गैरहाजिर होता है तो फिर वेतन कुछ दिनों के लिए पिछड़ जायगा और डाक्टर की दवा का 'बिल' कहां से चुकायेगा। पैसे की जरूरत उसको मशीनों के पुर्जों की भाँति निर्जीव और निर्मम बना रही थी।

वह सोचने लगा—"मुझ में और उस मशीन के पुर्जों में क्या अन्तर है? दोनों को अनवरत चलना पड़ता है, दोनों को अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता है, परिस्थिति का कोई प्रभाव हम दोनों पर नहीं पड़ता। भावों और विचारों के बोझ से दबे हुए मानव को इन्हीं कल-पुर्जों की भांति भाव और विचार हीन होना पड़ता है। किन्तु फिर भी ये सुखी हैं, क्योंकि ये प्राणहीन हैं, जड़ हैं।"

इसी समय मशीनें सहसा बन्द हो गयीं। क्षण भर के भयानक निस्तब्धता छा गई, जो 'क्या हुआ' 'क्या हुआ' की ध्वनि से पुनः भङ्ग हो गई। ठकुरी ने शून्य दृष्टि से चारों ओर देखा। उसके मानस-पटल पर एक विचार सहसा उदय हुआ। उसका मन चिल्ला उठा—'कहीं इसी तरह झुन्नू की भी प्राणों की मशीन रुक न गई हो!" वह आकुलता से उन स्थिर पुर्जों की तरफ देखने लगा। उसके मन ने फिर कहा—'ये पुर्जे अभी क्षण भर में ठीक कर दिये जायेंगे और मशीनें फिर अपने कार्य में लग जायंगी। किन्तु क्या 'झुन्नू' के प्राणों की मशीन एक बार रुक कर फिर चल सकेगी? सांसारिक शक्तियां यह करने के लिये अक्षम हैं।" शून्य विचारों के संसार में वह कुछ खोया-सा निरुद्देश्य होकर विचरने लगा।

मशीनों पर काम करने वाले मजदूर शोर मचाते हुए बाहर जा रहे थे। ठकुरी का शरीर उनसे धक्का खाता हुआ भी सचेत नहीं था। वह अपने स्थान पर मूक अडिग खड़ा हुआ था। उसके पड़ोसी और साथी हीरा ने

समीप आकर कहा—"ठकुरी इस तरह चुपचाप क्यों हो ? क्या मशीन तुम्हीं से बिगड़ गई है ?"

ठकुरी की चेतना ने करवट बदली, किन्तु ज्ञान अब भी सुप्त-सा था। हीरा ने उसको हिलाते हुए कहा—"ठकुरी, ठकुरी बोलते क्यों नहीं, क्या बात है। बोलो, क्या तुम्हीं से मशीन टूट गई है ?"

ठकुरी ने शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"कौन हीरा ! हां भाई, मेरा मन पुकार रहा है कि मशीन मेरे ही कारण मेरे ही हाथों बिगड़ गई है।"

हीरा भी गम्भीर हो गया। वह मिल मैनेजर के क्रोध के उफान से भली-भांति परिचित था। उसने साहस बटोरते हुए कहा—"जो कुछ हो गया, सो हो गया, अब सोच करने से क्या लाभ ! अभी तुम्हारी पेशी होगी मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। अगर वह तुम्हारे साथ कोई बेजा हरकत करेगा, तो प्राणपण से हम सब उसका विरोध करेंगे। तुम अकेले हो, यह भूल जाओ।"

ठकुरी का हृदय सहानुभूति से पिघल कर आंखों की राह निकलने का प्रयत्न करने लगा। उसका कण्ठ अवरुद्ध था। एक मर्मान्तक टीस उसके हृदय में बार बार उठ रही थी। वह खांस कर उस रुकावट करने वाले आवेग को बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगा।

हीरा ने सप्रेम उसकी पीठ पर हाथ रखते हुये कहा—'ठकुरी इतना परेशान मत हो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे ऊपर कोई आंच न आने पायेगी। तुम्हारा अपराध मैं अपने शिर ओढ़ लूंगा। मैनेजर को मेरे ऊपर हाथ उठाने की हिम्मत नहीं पड़ेगी।"

ठकुरी का हताश मन कुछ विश्राम करने लगा था। उसने हँसने की चेष्टा की और उसके द्वारा अपने मन के आवेग को शान्त करने की, किन्तु वह दोनों ही में असफल रहा। शायद उसे ज्ञात नहीं था कि हँसी तो मन की स्वस्थता की निशानी है।

हीरा ने उसको ढकेल कर बाहर ले जाते हुये कहा—"अरे, भले आदमी इतनी थोड़ी सी बात के लिये इतना घबराते हो? तुमने मशीन जान-बूझ कर तोड़ा नहीं, फिर उसके लिये तुम कैसे उत्तरदायी ठहराये जा सकते हो?"

ठकुरी के मुंह से बोल फूटा। उसने कहा—"भाई हीरा, यह प्राणहीन कर्कश ममत्वहीन मशीन नहीं, मेरे 'झुन्नू' के प्राणों की मशीन शायद मेरे ही कारण टूट न गई हो? वह आज कई दिनों से बीमार है। उसके प्राणों की गरमी से 'न्यूमोनिया' अपनी ठण्डक दूर करने में आज कई दिनों से लगा हुआ है। चार पांच दिनों से मैं काम पर आ भी नहीं रहा हूँ। आज वेतन मिलने का दिन है, पैसा पास में नहीं रहा, जो कुछ था वह डाक्टरों की निर्मम पाषाण मूर्ति पर चढ़ा दिया है। आज उसको मौत की गोदी में खेलता हुआ छोड़ आया हूँ। डाक्टर बिना पैसे लिए दवा नहीं देगा—यह बात उसने साफ-साफ कह दी थी। बिना पैसे इलाज कैसे होगा और बिना औषधि के झुन्नू बचेगा कैसे? वही पैसा बटोरने के लिये आज आया था। मेरे अभाग्य ने यहां भी साथ दिया है। मशीनों में खराबी आ जाने से वे रुक गई हैं, सारा काम अस्त-व्यस्त हो गया है। मेरा मन शंकित हो रहा है कि यदि आज तनख्वाह न बटी तो फिर मेरे झुन्नू का क्या होगा, मेरा क्या होगा और उसकी मां का क्या होगा?

ठकुरी के थमे हुये आंसू भावी आशंका से उमड़ कर हीरा के हृदय को प्लावित करने लगे।

हीरा को सब रहस्य समझ में आ गया। उसने सांत्वना देते हुये कहा—"गरीबों का आश्रय केवल भगवान हैं। वही झुन्नू की रक्षा करेगा।" फिर उसके मन ने मौन भाषा में कहा—'वही झुन्नू जो मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पैरों से लिपट जाता और कहता—'चाचा आये, चाचा आये।"

ठकुरी ने अविश्वास के साथ कहा—"भाई, कलयुग में मनुष्य भगवान को भूल गया है, वह केवल कलों पर विश्वास करता है, अतएव भगवान ने भी उसको भुला दिया है।"

हीरा झुन्नू को अपनी कल्पना के आंगन में खेलता हुआ देख रहा था। ठकुरी उसका बाल्यबन्धु था। ठकुरी के कई बच्चों को वह अपने हाथों से प्रवाहित कर आया था। इतने दिनों तक जीवित रहने का सौभाग्य अकेले झुन्नू को ही प्राप्त हुआ था। झुन्नू की हँसी देखकर वह भी वही तुष्ठि अनुभव करता था, जैसी कोई पिता करता है।

उसने उपालम्भ मिश्रित स्वर में कहा—"झुन्नू को ऐसी अवस्था में छोड़कर तुम्हें नहीं आना था ठकुरी! और तुमने मुझे भी कोई खबर नहीं दी! जानते हो, तुम्हारे बच्चों को मैं कितना प्यार करता हूं।"

ठकुरी ने आंसुओं को पोछते हुए कहा—"जानता क्यों नहीं भाई! इसी भय से तो मैंने तुम्हें कोई इत्तिला नहीं दी। तुम्हारे अहसानों का बोझ कब तक और कहां तक उठाऊं भाई।"

हीरा ने अपने मन के मैल को आंखों के मार्ग से निकालते हुए कहा—"शायद इसका मतलब यही है कि मुझे तुम्हारे बच्चों को अपना समझने

का अधिकार नहीं है ।

ठकुरी ने भी रोते हुए कहा—"भाई माफ करो, यह मेरा मतलब नहीं है। अगर इस बार झुन्नू बच गया तो फिर उसको तुम्हीं को सौंप दूंगा। मैं अभागा हूं, पुत्र भक्षक पिता हूं।"

इसी समय मशीनें फिर बड़े वेग से चल पड़ी, ठीक उसी तरह जैसे बांध का जलवेग बांध टूट जाने से भीषण रव के साथ चल पड़ता है। हीरा भी बिना उत्तर दिये हुए ही चला गया और ठकुरी भी चिन्ता की लहरों में डूबता-उतराता हुआ अपनी मशीन पर चला आया।

* * ग *

दोपहर की छुट्टी में ठकुरी का मन घर जाने के लिये उतावला हो गया। किन्तु साहस उसका साथ छोड़ रहा था। यदि झुन्नू की दशा खराब हुई तो क्या वह फिर आ सकेगा? मानव जितना आगामी दुख की कल्पना से भयभीत होता है उतना दुःख आ पड़ने पर नहीं।

मिल के भीतर ही मैनेजर का बँगला था। संकल्पों और विकल्पों से लड़ता हुआ वह मैनेजर के बँगले की ओर चला गया। बँगले में चारो ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। उसने एक सिपाही से पूछा—"यह बँगला किसका है?" सिपाही ने कड़क कर कहा—"अन्धा है जानता नहीं, यह बँगला मैनेजर साहब का है। भाग जा, आज कल उनकी एकमात्र लड़की बीमार है, इससे उनका दिमाग बिगड़ा हुआ है। आदमी को देखते ही काटने दौड़ते हैं। चेचक पीड़ित एक मजदूर, एक दिन उनसे बँगले पर आकर छुट्टी मांगने लगा। उनकी लड़की कहीं उस मजदूर से टकरा गई। दूसरे दिन से वह भी बीमार पड़ गई और उसके भी चेचक निकल आई।

तब से साहब का मिजाज खराब हो गया है और मजदूरों के आने की सख्त मनाही हो गई है।"

बातूनी सिपाही बातें कर ही रहा था कि उसका बोल सहसा रुक गया। ठकुरी और सिपाही ने एक साथ देखा—थोड़ी दूर पर मैनेजर खड़ा हुआ उसकी ओर देख रहा था।

मैनेजर ने कड़क कर पूछा—"कौन है, यहां क्यों आया है? अब ठकुरी के भागने का मार्ग नहीं था। बिखरे हुए साहस को वह एकत्रित करने लगा। उसने हाथ जोड़कर बड़ी दीनता से कहा—"हजूर ५८३ नं० का मैं मजदूर हूँ, तिरा ल में काम करता हूँ। मेरा अकेला लड़का निमोनिया से बीमार है मृतप्राय है। इससे छुट्टी मांगने के लिये आया था।"

मैंनेजर दौड़कर उसके पास आया और आते ही उसने ठोकरों से उसे मारना शुरू कर दिया। पैर के साथ-साथ उसके हाथ भी चलने लगे। ठकुरी उसके प्रहारों को शिलाखंड की तरह अचल होकर सहन कर रहा था जब वह मारते-मारते थक गया तब उसने चिल्लाकर कहा—"मेरे पास छुट्टी लेने आया है। यह क्यों नहीं कहता कि मेरी बच्ची की जान लेने आया है। मैं जानता हूं, एक मजदूर मेरी बेटी को चेचक दे गया है अब तू उसकी जान लेने आया है। कहता है कि मेरा बच्चा बीमार है, वह मर क्यों नहीं जाता! मजदूरों के बच्चों को जिन्दा रहने का अधिकार नहीं है। वे तो मरेंगे ही। जब तेरा बच्चा मर जावे तब छुट्टी के लिये आना, मैं एक दिन के बजाय दो दिन की छुट्टी दूंगा।"

ठकुरी प्रहार सहते-सहते नि:शक्त हो चुका था। वह अचेत होकर गिर पड़ा। दूर खड़ा हुआ सिपाही कांप रहा था। मैनेजर थककर अपने बँगले

में घुस गया। सिपाही की समझ में न आया कि वह क्या करे।

थोड़ी देर बाद ठकुरी अचेत अवस्था में मिल के अस्पताल में दाखिल करा दिया गया।

* * * *

सन्ध्या समय वेतन बट रहा था। हीरा बड़ी व्यग्रता से ठकुरी को खोज रहा, किन्तु उसका कहीं पता न था। दोपहर की छुट्टी के बाद किसी ने उसको देखा नहीं था। हीरा का चित्त उद्विग्न हो रहा था। उसने यही स्थिर किया कि ठकुरी घर चला गया है। किन्तु उसके मन ने कहा—"बिना तनख्वाह लिये वह कैसे जायगा?" वह कुछ जान न सका।

ठकुरी के नाम पुकारे जाने की प्रतीक्षा करने लगा। उसका नाम और नम्बर पुकारा गया, परन्तु वेतन लेने के लिये कोई आगे नहीं बढ़ा। हीरा अपने नाम पुकारे जाने की प्रतीक्षा करने लगा।

हीरा का भी नम्बर आया। उसने विकलता के साथ वेतन लिया और सीधा ठकुरी के घर की ओर भागा। विकलता के मारे उसके पैर ठीक से पड़ते न थे। उसके हृदय में न जाने क्यों भयानक तूफान उठा हुआ था। आशा और निराशा से लड़ता हुआ वह ठकुरी के घर के पास आ गया। एक क्षण भर ठहर कर उसने आहट ली। चारों ओर भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। उसने सहमते हुये कलेजे से पुकारा—"ठकुरी भाई!"

घर के भीतर से क्रन्दन का चीत्कार निकल पड़ा। ठकुरी की पत्नी महदेई विकल स्वर में रो पड़ी। हीरा पहले कुछ ठिठका किन्तु दूसरे ही क्षण बिजली की तेजी से वह घर के भीतर चला गया। सामने ही पृथ्वी पर उसका प्यारा झुन्नू पड़ा हुआ था। उसने उसको उठाकर अपने कलेजे से

लगा लेना चाहा, किन्तु वह तो इस समय मिट्टी का एक ढेला था। न्यूमो-निया ने उनको अपना ही जैसा शीतल बना लिया था।

महदेई ने चिल्लाकर कहा—"लाला मैं तो लुट गई।" स्नेही और सगों को देखकर दुख थमना नहीं जानता। हीरा महदेई दोनों रो रहे थे।

*　　*　　*　　*

ठकुरी को जब होश आया, तब सन्ध्या हो रही थी। वेतन बँट चुका था। मिलों के दवाखाने के डाक्टर तो मालिकों की सुविधा के लिये नौकर रखे जाते हैं। दवाखाने का सारा भार कम्पाउण्डर पर रहा करता है। कम्पाउण्डर जो एक सहृदय व्यक्ति था उसकी कथा सुनकर उसके साथ चलने को तैयार हो गया। कम्पाउण्डर को साथ चलते देखकर ठकुरी की चोटें भूल सी गई थीं। उसे आशा होने लगी थी कि मैनेजर की मार ने उसके पापों को धो दिया है, अब उसका झुन्नू अवश्य बच जायगा। वह मन ही मन देवताओं को मनाता हुआ घर की ओर जाने लगा। उसे यह भी भूल गया था कि उसके पास पैसा नहीं है, उसको वेतन नहीं मिल सका है। उसने रास्ते को कम करने के लिये एक एक्का कर लिया। जब आशाओं की गठरी बांधे हुये वह घर पहुंचा, वहां सब कुछ समाप्त हो चुका था। महदेई और हीरा बिलख बिलख कर रो रहे थे। ठकुरी की चोटें पुनः जाग्रत हो गयीं। वह अपने घर के दरवाजे पर पुनः अचेत होकर गिर पड़ा।

*　　*　　*　　*

दूसरे दिन प्रातःकाल श्मशान पर बच्चों के दो शव आये। एक तो ठकुरी के बच्चे झुन्नू का था जिसे हीरा अपनी गोद में लाया था और

दूसरा मैनेजर की बच्ची का था जो चेचक की पीड़ा को सहन न कर सकी थी मानों वह अपने पिता के पापों का प्रायश्चित करने के लिये झुन्नू से क्षमा मांगने आई थी। छोटे बड़े का भेद मिट चुका था। दोनों एक ही पथ के पथिक थे। दोनों के लिये जल की समाधि थी।

---

*

पन्द्रह अगस्त के दिन

[१]

अपने ही सुहाग में विभोर वायु का एक झोंका थिरकता हुआ आया और झिलमिलाते दीपक को, नटखट बालकों की भांति, बुझाकर फिर बाहर निकल गया। बृद्ध के मुंह से वेदना से नहाई हुई "आह" निकल पड़ी, और उसी के समीप बैठी हुई प्रौढ़ा के आकुल कानों में प्रवेश कर उसके हृदय को मथने लगी। प्रौढ़ा ने उद्विग्नता के साथ पूछा—"अब्बा, अब आपकी कैसी तबियत है?"

वृद्ध ने अधीरता और प्रच्छन्न पीड़ा को ढाढस के आवरण से ढंकते हुए कहा—"नूरी, मेरी प्यारी बेटी, अच्छी है, आज बिल्कुल अच्छी है।"

नूरी अर्थात् नूरुन्निसा ने अपने पिता के निष्फल प्रयत्न को सफल बनाने के उद्देश्य से अनजान की भांति कहा—"हूँ।" इसके आगे वह कुछ कह न सकी। सत्य ने उसका कण्ठ दबोच लिया। शब्दों की गति अवरुद्ध हो जाने से कार्य द्वारा उसकी पूर्ति करने के लिये वह उसके समीप और खिसक गई, और उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

बाहरी अन्धकार ने उस वृद्ध के मानसिक नेत्रों को अन्तस्तल की ओर खोल दिया और उसके स्मृति-पटल पर धूम्र-सी कुछ अस्पष्ट विचारों की

रेखायें अंकित होने लगीं। नूरुन्निसा पर उंगलियों द्वारा वह अपना वात्सल्य उंडेलता हुआ कहने लगा—"नूरी, तुझे नहीं मालूम कि वास्तव में तू कौन है। आज के पहले मेरे मन में कई बार यह बात उठी कि मैं तुझको अपने वंश की कहानी बताऊं। हां, अब वह केवल कहानी मात्र है। जो कभी जीवित सत्य थी, आज वह केवल भूली हुई कहानी है।"

वृद्ध ठहर गया, और उस गहन अन्धकार में विचारों का क्रम ढूंढ़ने लगा। थोड़ी देर पश्चात् उसने एक दीर्घ निःश्वास के साथ कहना आरम्भ किया—"नूरी, आज से ६० वर्ष पहले की बात है। वह हमारी अमलदारी का जमाना था। तैमूर के वंश का आखिरी चिराग दिल्ली के लाल किले में अब भी जगमगा रहा था। यह सच है कि उसका प्रकाश हिन्दुस्तान की चारों दिशाओं तक नहीं पहुंचता था, किन्तु बड़प्पन उसका अब भी बाकी था। बहादुरशाह अभी तक शहन्शाह बहादुरशाह थे और अकबर के बनाये लाल किले में अब भी नौबत उन्हीं के नाम की बज रही थी। यह वह जमाना था जब फिरंगियों के भाग्य का सितारा बड़े जोरों से चमक रहा था और उन्होंने मरहटों की हुकूमत खत्म करके सारे मुल्क पर सल्तनते बरतानिया का सिक्का जमा दिया था। मुल्क की दोनों कौमें—हिन्दू और मुसलमान गुलाम बन चुकी थी और दुनियां में दिलेरी, मरदानगी और ईमानदारी, अपनी आखिरी सांसे ले रही थी।"

"मेरी कहानीं उसी जमाने से शुरू होती है नूरी, तेरा अभागा बाप उन दिनों अभागा नहीं था। उसके जन्म दिन पर जितनी खुशियां मनाई गई थीं उनको मैं बताने में असमर्थ हूँ, मगर जो कुछ भी मेरी मां ने मुझ से कहा है, वह एक हैरत पैदा करने वाली कहानी है। हालांकि दिल्ली लुट

चुकी थी, गरीब थी, मगर कहावत है कि हाथी चाहे जितना लट जाय फिर भी भैंसे से बड़ा ही ठहरेगा। जिस दिन मैं दुनिया में आया उस दिन इतना धन बांटा गया कि गरीब अमीर हो गये, भिखमंगे और कंगाल निहाल हो गये। मेरे दादा बहादुरशाह दिल्ली की बची बचाई दौलत को दोनों हाथों से लुटा रहे थे। जाने दो नूरी, इन बातों को कहने से कोई फायदा नहीं। लेकिन बेटी, मैं अपने और अपने खान्दान के लिए तकलीफ और मौत, हैरानी और परेशानी का पैगाम लाया था। मेरे जन्म के कुछ ही महीने बाद हिन्दुस्तान में आजादी की लड़ाई छिड़ गई। हिन्दू और मुसलमान दोनों कन्धे से कन्धा भिड़ाकर आजादी के लिये लड़ाई के मैदान में कूद पड़े। मेरे बूढ़े दादा बहादुरशाह भी अपनी तलवार सूत कर, आजादी के रणबांकुरों के नेता बनकर अंग्रेजों को ललकार कर उनसे लोहा लेने लगे। एक बार फिर तैमूरी तलवार अपनी तवारीख बनाने लगी और उसके साये के नीचे एक बार फिर पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के नौजवान सिमट कर आ गये और उन्होंने अंग्रेजों की हुकूमत खत्म कर दी। हिन्दू और मुसलमान उन दिनों बेटी, दो जिस्म और एक जान थे।"

वृद्ध ठहर गया। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, भावोद्रेक से उसकी निश्वासें विकलता के साथ बाहर निकलने लगीं। नूरुन्निसा उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी। वृद्ध ने पुनः कहना आरम्भ किया—"लेकिन नूरी, वह समां एक सपने की तरह हमेशा के लिये गायब हो गया। तैमूरी खांदान की शंमा की बुझने से पहले वाली वह आखिरी लौ थी, जिसने फिरंगियों को इतना झुलसा दिया था, जिसकी जलन को वे आज दिन तक नहीं भुला सके और उन्होंने फिर वैसा मौका कभी नहीं आने दिया। हिन्दू और मुस-

लमानों को लड़ा दिया, एक को दूसरे का दुश्मन बना दिया। मजहब की दीवार उनके बीच में खड़ी कर दी, उनके घर को दो घरों में बाट दिया।"

बृद्ध फिर विकल हो गया। नूरुन्निसा ने उसको शांत करते हुये कहा "अब्बा, अब उन बीती बातों को याद करने से क्या फायदा है?" बृद्ध ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा—"ठीक कहती हो बेटी! अब उन बातों से कोई फायदा जरूर नहीं है, मगर तेरी तवारीख तो तुझे बता देना जरूरी है। अभी तक कहने की हिम्मत नहीं पड़ी कि तू बहादुरशाह की पड़पोती है, मगर अब मेरा आखिरी वक्त नजदीक है। इसलिये तेरी असलियत तुझे बता जाना जरूरी है। बेटी, पांसा फिर पलटा और अंग्रेजी फौज ने लाल किले पर कब्जा कर लिया। मेरे दादा और बाप कैद कर लिये गये लेकिन मेरी माँ बांदियों के साथ किसी तरह निकल भागी। दिल्ली से भागकर लाहौर आई। क्योंकि उन दिनों लाहौर महफूज था। रास्ते में उनकी जो दुर्दशा उन्हीं की बांदियों ने की, वह बड़ी दर्दनाक कहानी है। मेरी माँ कहते-कहते रो पड़ती थीं। उसे दुहराकर अब तुझे भी दुखी नहीं करूंगा। उन्होंने बड़ी मुश्किल से मेरी परवरिश की। अपने तन का खून पिलाकर मुझे बड़ा किया मगर जब मैं कुछ करने धरने के लायक हुआ तब वे भी चल बसीं। बेटी, उस वक्त यह तेरा बाप सिर्फ १४ साल का अल्हड़ लड़का था।"

बृद्ध की सहन-शक्ति का बांध टूट गया और आंसू उमड़-उमड़ कर उसकी आंखों से बाहर निकलने लगे। नूरुन्निसा ने अपने वर्षों के अभ्यास से जान लिया कि उसका पिता रो रहा है। उसके आंसुओं को

ओढ़नी के एक सिरे में समेट कर रखने लगी।

वृद्ध ने उसके हाथ को पकड़ कर कहा—"बेटी, यह तेरा बाप बड़ा अभागा है। पैदा होते ही वंश का नाश किया और सारी जिन्दगी रोकर ही काटी है। चौदह साल के लड़के की कौन मदद करता। मैं लाहौर की सड़कों पर घूम फिरकर, फटकार, तिरस्कार और मार खाकर जिन्दगी गुजारने लगा। लेकिन बेटी, भीख मांगने की हिम्मत कभी नहीं पड़ी। मेरी मां ने मरते दम तक किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और मुझको हमेश हिदायत की कि भूखों मर जाना मगर भीख माँगकर तैमूरी खून को मत लजाना। मैं मजदूरी करने लगा, बाजार में डलियां ढोकर अपनी जिन्दगी गुजारने लगा। चालीस सालों की मेहनत के बाद मेरे पास कुछ पैसा इकठ्ठा हुआ और उस वक्त मैंने निकाह किया। तेरी माँ भी बड़ी नेकबख्त थी, वह भी दुनिया के हाथों से सताई हुई एक मजलूम थी। निकाह करने के बाद हम लोग आराम से जिन्दगी बसर करने लगे। हमारी छोटी मोटी एक दुकान हो गई थी। हमारे निकाह के बाद तेरे कई भाई बहनें पैदा हुये मगर उनमें से कोई भी न बचा। जब मैं साठ साल का था तब तू पैदा हुई, उसी साल तेरी माँ ने भी मुझ बदनसीब का साथ छोड़ दिया। उसके मरने के बाद मैंने जरूर खुदकशी कर ली होती, मगर तेरी भोली सूरत ने मुझको वह गुनाह नहीं करने दिया। कैसे तेरी परवरिश की और फिर तेरी शादी की, यह सब तू जानती ही है।" एक दीर्घ निश्वास लेने के लिये वृद्ध ठहर गया। फिर धीरे-धीरे कहने लगा—"जानती हो बेटी, यह वह जगह है जहां मेरी मां और तेरी माँ की कबरें पास पास बनी हैं, हालांकि वे दोनों कब्र में सोई हुई हैं मगर मैं उनकी सांसें हमेशा रोज सुनता हूं। उनकी रूहें

यहां मंडरा रही हैं। और इसी लोभ से मैं अपने आखिरी दिन यहाँ गुजार रहा हूँ। इस तमन्ना और आरजू से कि जब मैं मरूं तो इन्हीं के पास मुझे भी दफनाया जाय। इसलिये यहाँ इस तनहाई के आलम—कब्रस्तान में मड़ैया छाकर रह रहा हूं। मैंने तुझसे कई बार कहा कि तू मेरे पास न आया कर, अपने खाबिन्द के पास रहा कर। मगर तू नहीं मानती, हर जुमे को तू यहाँ आकर जबरदस्ती रहती है यह बात अच्छी नहीं है. बेटी।" नूरुन्निसा ने वृद्ध के हाथ को स्नेह से दबाकर कहा—"अब्बा मुझे भी अपना फर्ज अदा करने दो। मेरा हक मुझसे न छीनो। तुम्हें छोड़कर जाने को मेरा दिल गवाही नहीं देता।"

वृद्ध ने प्रसंग परिवर्तन करने के उद्देश्य से पूछा—"बेटी मंसूर कहाँ है?" मंसूर अली नूरुन्निसा के पति का नाम है। उसने धीमे स्वर से उत्तर दिया—"आज कई दिनों से हिन्दू-मुसलमानों की दुश्मनी बढ़ती चली जा रही है। सुनने में आया है कि अंगरेज़ मुल्क छोड़कर जा रहे हैं और उन्होंने पाकिस्तान बनाना मंजूर कर लिया है। लाहौर पाकिस्तान में रहेगा, इससे यहाँ के हिन्दू भाग रहे हैं। उसी सिलसिले में वे भी गये हुये हैं।

वृद्ध ने व्यंगपूर्ण हास्य के साथ कहा—"अंग्रेज जा रहे हैं! नहीं बेटी, अंग्रेज नहीं जा रहे हैं। वे अपनी जड़ और गहरी जमा रहे हैं। पाकिस्तान दर असल इंगलिस्तान होने जा रहा है जहां से उनसे पिंड छुड़ाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन हो जायेगा। मुसलमान जरा नहीं सोचते कि जो हमारे जीने मरने के साथी हैं वे कभी बेगाने नहीं हो सकते। बेगाना तो हमेशा तीसरा अजनबी ही रहेगा क्योंकि वह तो हमें लूटकर अपना घर भरना चाहता है, हमको गुलाम बनाकर खुद राज करना चाहता

है। हिन्दू और मुसलमान एक चने की दो दालें हैं लेकिन अंग्रेज ाो उन्हें पीसने वाली चक्की के पाट हैं जो मुरव्वत किसी के .साथ नहीं करेंगे। अफसोस है कि इत्तहाद के जिस बीज को हमारे दादा अकबर ने बोया था आज उसी का नाश करने के लिये हमारी कौम तैयार हो रही है। यह समझ लो बेटी, जब तक पाकिस्तान रहेगा, तब तक अंग्रेज रहेंगे। और जब तक अंग्रेज रहेंगे तब तक यहां से गुलामी, बेईमानी, मक्कारी और फरेब नहीं जायेंगे। पाकिस्तान दर असल अंग्रेजों का पाकिस्तान है जहाँ उन्हें कोई छेड़ न सकेगा, दुख न दे सकेगा, मगर यही पाकिस्तान मुसलमानों के खून से शराबोर होगा। जिसकी नीव इन्सान की हड्डियों और उनके खून के गारे से बनाई जा रही है वहाँ सिवाय खून के दरिया बहने के और तुम क्या उम्मीद कर सकती हो। दुश्मन हिन्दू, दोस्त अंग्रेज से लाख दर्जा बेहतर हैं। लेकिन जब तक हिन्दू और मुसलमान के बीच में अंग्रेज रहेगा, तब तक दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे रहेंगे।" कहते कहते वृद्ध का स्वर काँपने लगा। उसी समय दूर—बहुत दूर कोलाहल की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई दी। नूरुन्निसा ने उसके सुनने का प्रयास करते हुये कहा—"अब्बा, मालूम होता है कि जिस बात का डर था वह शुरू हो गयी लाहौर में मारकाट शुरू हो गयी। आज १४ अगस्त है, अंग्रेजों के हिसाब से १५ अगस्त से पाकिस्तान बन गया। सुनिये, बन्दूकें छूट रही हैं, बम बरस रहें हैं और आग की खूख्वार लपटें उठकर नीले आसमान को ललाई में बदल रही हैं। अब्बा, क्या यही पाकिस्तान है?" कहते कहते नूरुन्निसा वृद्ध की छाती से चिपट कर रोने लगी। वृद्ध ने उसे अबोध बालिका की भाँति अपनी विशाल किन्तु झुर्रियां से परिपूर्ण भुजाओं के मध्य छिपा लिया।

[२]

थोड़ी देर बाद वृद्ध ने नूरुन्निसा को पृथक करते हुए कहा—"बेटी, उठकर देख तो कैसी रोशनी हो रही है।

पिता के हृदय से चिपकी हुई नूरुन्निसा ने शिर उठाकर देखा कि कुछ क्षणों पहले की कालिमा को दक्षिण दिशा के लाल क्षितिज की लालिमा भक्षण कर रही है। उसे झोपड़ी के चारों ओर का वातावरण स्पष्ट-सा प्रतीत होने लगा। कब्रस्तान के वृक्षों की ओट से झांकता हुआ आकाश का प्रतिबिम्ब उन्हें किंचित भयंकर बनाने लगा और जहां-तहां कब्रों के धवल चबूतरे स्पष्ट रूपसे बताने लगे कि वह कब्रस्तान है। तुमुल हाहाकार, मारकाट की पैशाचिक ललकार, मरने वालों की आर्त-पुकार, अबलाओं का चीत्कार, अभागे बच्चों पर वज्र प्रहार, वह कल्पनातीय नर-संहार और महाकाल की प्रत्यक्ष हुंकार, सभी मिश्रित और सम्मिलित होकर दिशाओं को कंपित करते हुए, कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट रूप से आकाश में समाविष्ट हो जाने के लिए आकुल होकर गूंजने लगे। वृद्ध के धैर्य का बाँध टूट गया। वह अपनी रुग्णता को भूल गया, आयु की दी हुई निर्बलता को भूल गया। उसका ठंडा खून तप्त होकर खौलने लगा। धमनियां वेग से परिचालित होने लगीं। बुढ़ापा खो गया और बीता हुआ यौवन फिर आ गया। वह उत्तेजना की चरम सीमा थी। उसकी काया-पलट को देखकर बेचारी नूरुन्निसा अवाक्, स्तब्ध और मूक तथा अचल होकर उसकी ओर निहारने लगी। वृद्ध ने उठते हुए कहा, "नूरी तू यहां ठहर, मैं अभी आता हूं।"

नूरुन्निसा को होश आया, उसने झपटकर उसे पकड़ते हुए कहा, "अब्बा अब्बा, तुम्हें क्या हो गया है ?,, इसके आगे वह और कुछ कह न सकी

और वह उसके पैरों से चिपट गई। वृद्ध ने उसको बलपूर्वक पृथक करते हुए कहा, "नूरी तू डर मत। मैं इस वक्त बिल्कुल अच्छा हूं। मेरी गयी हुई जवानी फिर वापस आ गई है। मैं आज एक नई ताकत महसूस कर रहा हूं। मुझे जाने दे। जितनी जल्दी मैं इस मारकाट को, शैतान के नाच को, रोक सकूं उतना ही अच्छा है। अंग्रेजों ने इन्सान को शैतान बना दिया है। माना कि आज मैं दर-दर का मोहताज हूं, बूढ़ा हूं, ताज, ताकत और फौज से महरूम हूं; मगर फिर भी बहादुरशाह का पोता, तख्ते मुगलिया का वारिस, हिन्दुस्तान का रहबर और हिन्दू-मुसलमान के इत्तिहाद की जड़ सीचने वालों का आखिरी निशान हूं। भाई-भाई का खून करते मैं हरगिज़ बरदाश्त नहीं कर सकता। एक बार उन पागलों को रोकूंगा और अगर वे न मानेंगे तो मेरी लाश पर चढ़कर ही वे जुल्म करेंगे, सितम ढायेंगे। उनकी शर्मनाक हरकतों को देखने और सुनने के लिए मैं जिन्दा न रहूंगा।"

यह कहकर वृद्ध जवान की भाँति चलने लगा किन्तु उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, सांस फूल रही थी। सिर घूम रहा था, आँखों के सामने धुंधली छा रही थी, उत्तेजना उसे बरबस घसीटे लिए जा रही थी और वह धुन में मस्त, अड़चनों, बाधाओं और रुकावटों को लांघता हुआ और उन पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। पौ फट चुकी थी और उस नर-संहार को देखने के लिए पूर्व दिशा से सूर्यदेव झांकने का आयोजन कर रहे थे।

कुछ देर तक तो नूरुन्निसा वहीं पर हतचेत सी होकर शून्य दृष्टि से अपने पिता की ओर देखती रही। उसे कुछ ज्ञान न था कि क्या हो गया है।

कुछ क्षणों पश्चात उसकी ज्ञान-तन्तु जागृत हुई और बीती हुई बातें याद आने लगीं। वह भी शीघ्रता के साथ उसके अनुसरण के प्रयास में लाहौर नगर की ओर भागने लगी।

[३]

सूर्य भगवान १५ अगस्त १९४७ को एक ऐतिहासिक दिवस बनाते हुए उदय हुए। भारत के अप्राकृतिक दो टुकड़े रात्रि की कालिमा में ही कर दिये गये थे। अंग्रेज जल्लाद ने उसे जहां जहां से काटा था, वहां वहां से रक्त के श्रोतों का बहना एक स्वाभाविक घटना थी। पाकिस्तान का इतिहास बनने लगा और उसके प्रारंभिक पृष्ठ रक्त से रंजित अक्षरों से लिखे जाने लगे। पंजाब की राजधानी लाहौर उस दिन पिशाचों और शैतानों का क्रीड़ा क्षेत्र हो रही थी। मानव-जीवन कितना नगण्य हो सकता है उस कल्पना का साक्षात्कार उसी दिन संसार को प्राप्त हुआ। अग्नि विस्फोटक द्रव्यों का भण्डार, तलवार, कांटा, बल्लम, बन्दूक, बम और हथगोलों से सुसज्जित, रक्त से स्नान किये हुए, ज्ञानशून्य नर-पिशाचों की सेना तुमुल-नाद से प्रलय का तांडव करती हुई, अग्रसर हो रही थी और दूसरी ओर बलि के बकरों की भांति महान उद्विग्नता के साथ उन्हीं के अनुरूप, जो शताब्दियों से एक ही साथ खेले कूदे थे, भाई भाई की भांति एक ही साथ हिलमिल कर रहे थे, एक दूसरे की शादी-गमी में शरीक हुए थे अवाक्, भयभीत होकर मरने की तैयारी कर रहे थे। उन दोनों में कोई भेद नहीं था और यदि था तो उनके धार्मिक विश्वासों में था जो संसार के आदि से व्यक्तिगत वस्तु रहे हैं और जो जन्म लेने के पश्चात् प्राप्त होते हैं तथा जो नैसर्गिक न होकर कृत्रिम हैं।

वृद्ध उन्मत्त की भांति आगे बढ़ता जा रहा था। इसमें सन्देह नहीं कि उसके शारीरिक अवयव वयस के भार से निशक्त हो रहे थे किन्तु उत्तेजना जैसी मदिरा-पान के पश्चात् प्राप्त होती है, उसको कर्तव्य पथ की ओर घसीटे लिए जा रही थी। नूरुन्निसा भी पुतली की भांति उसके पीछे खिंची चली जा रही थी।

लाहौर नगर जो शृंगार का क्रीड़ाक्षेत्र अपने आदि काल से रहा है, आज अग्नि की लपलपाती हुई जिह्वा का शिकार हो रहा था, मरघट सा उजाड़ और भयावह हो चुका था। शहर के समीप पहुंचते ही वृद्ध को सामने से एक पैशाचिक दल आता हुआ मिला। वह उस मोहल्ले का चौराहा था। उस चौराहे के एक ओर एक सम्प्रदाय के लोग रहते थे और दूसरी ओर दूसरे सम्प्रदाय के। वृद्ध इस मोहल्ले से भली भांति परिचित था क्योंकि उसके जीवन के दिन इसी मोहल्ले में बीते थे। यह मान स्वभाव है कि वह पहले परिचित स्थान पर जाने का ही प्रयास करता है। वृद्ध खड़ा होकर उस नर-संहारक भीड़ की ओर देखकर मनुष्यों के पहचानने का प्रयत्न करने लगा। उस भीड़ का नेता तलवार नचाता हुआ अदम्य उत्साह से आगे बढ़ता चला आ रहा था। प्रातःकाल के श्वेत प्रकाश ने उसकी वास्तविकता वृद्ध और नूरुन्निसा के सामने प्रकट कर दी। वह वृद्ध का जामातृ और नूरुन्निसा का पति मन्सूर था। वृद्ध उसकी ओर आंखें फाड़कर देखने लगा। उन्मत्त मन्सूर ने भी उसे पहचान लिया और वह भी क्षण भर के लिए चकित होकर स्थिर सा रह गया।

वृद्ध ने फटे हुए गले से चिल्लाकर कहा "मन्सूर।"

मन्सूर ठहर गया और उसके साथ ही भीड़ भी ठहर गई। वे लोग सहसा कह उठे. "अरे ये तो कब्रस्तान वाले शाह साहब हैं।"

वृद्ध उसके सामने जाकर कहने लगा, "मन्सूर, तुम आज क्या करने जा रहे हो, जानते हो? आजादी आज तुम्हें मिली है और उस आजादी को तुम खून से डुबा देना चाहते हो। तुम आग लगा रहे तो अपने ही घरों में। तुम कत्ल कर रहे हो तो अपने ही सगे भाइयों का। ठहरो और सोचो कि तुम्हारे इस जुल्म का क्या नतीजा होगा। मजलूमों का खून-ए-नाहक कभी वेकार नहीं जाता। अंग्रेजों की कौम दुनिया की एक बहुत बड़ी होशियार कौम है। पाकिस्तान को बनाकर उसने अपनी जड़ मजबूत की है। जिसने तुम्हें मजहबी जोश दिलाया है क्या तुमने उसे पहचानने की कोशिश की है, पता लगाओगे तो तुम्हें मालूम होगा कि वह शख्स कौम का सबसे बड़ा गद्दार है और अंग्रेजों से तनख्वाह इसी बात की पा रहा है। उसको मजहब से उन्सियत नहीं है, मुसलमान कौम से उन्सियत नहीं है, दीन और ईमान से उन्सियत नहीं है, और अगर उसे कुछ उन्सियत है तो अपने ऐश से और आराम से और अपनी तनख्वाह से। तुम लोग मुझे नहीं जानते हो। आज मैं वह भेद खोल रहा हूं। मैं बहादुरशाह, दिल्ली के आखिरी शाहन्शाह का पोता हूँ। अंग्रेजों ने मेरी ही रियासत अपने कब्जे में की है। इनकी मक्कारी, फरेब और चालाकी को जितना मैं समझ सकता हूँ तुम नहीं जानते।"

वृद्ध की शक्ति क्षीण हो रही थी। वह सांस लेने के लिए ठहर गया। इसी समय एक ने कहा, "शाह साहब पागल हो गये हैं, बुढ़ापे में आदमी को जनून हो जाता है।" दूसरे ने कहा, "नारे लगाओ, वक्त बरबाद मत करो। काफिरों का न करो और उनकी दौलत पर कब्जा करो।"

तीसरे ने कहा, "हिन्दू औरतों को बेचने से गहरी रकम हाथ लगेगी।'

मन्सूर ने कहा—"अब्बा, आप रास्ते से हट जाइये। हमारे भाई बेसब्र हो रहे हैं। पाकिस्तान के मानी ही हैं, काफिरों की कुर्बानी से उसको पाक बनाना। आपका दिमाग सही नहीं है।" फिर नूरुन्निसा से कहा—'तू यहां क्या कर रही है, जा, अपने घर जा।"

वृद्ध के उत्तर देने के पहले ही नूरुन्निसा ने जोश के साथ उत्तर दिया, "घर जाऊंगी लेकिन तुमको अपने साथ लेकर। मैं तुमको हरगिज यह गुनाह नहीं करने दूंगी। अगर तुमको लड़ने का हौसला है तो बराबरी की लड़ाई लड़ो, मरदों की मरदानगी कमजोरों और असहायों की रक्षा में होती है, उनकी जान लेने में नहीं। इन्सान अगर जान बख्श नहीं सकता तो उसको ले भी नहीं सकता। बच्चों और औरतों के खून से हाथ रंगकर तुम आजादी भोगना चाहते हो?"

मौलवी ताज मोहम्मद ने चिल्लाकर कहा, "हदीस में मर्द और आका की मुखालफत करने वाली औरतों को सूली पर चढ़ाने का हुक्म है। मन्सूर, अभी इसी वक्त इसको तलाक देकर अपना पल्ला पाक करो और यह शाह नहीं काफिरों का भेदिया है। मेरे बहादुर जवानों अपने रास्ते से इसको हटा दो और अगर न माने तो काफिरों की तरह इसको भी मौत के घाट उतार दो। मन्सूर, अगर तुझे कोई कलक हो तो इनको भगा दे। मैं एक आखिरी मौका देता हूं।"

मन्सूर ने सक्रोध कहा—"रास्ता छोड़ दो, नूरी, तू घर जा। मैं हुक्म देता हूं कि तू अपने बाप को लेकर घर जा।"

वृद्ध ने आगे बढ़ते हुये कहा—"नहीं बेटा मन्सूर, हम वापस नहीं जा

सकते। अपने जीते जी मैं तुम लोगों को हरगिज ऐसा गुनाह नहीं करने दूंगा। इसलाम का नाम डूबते मैं हरगिज नहीं देख सकता। अगर तुमको अपने मन की करना है तो अपने शाहन्शाह बहादुरशाह के पोते पर तलवार चलाओ।"

मौलवी ताज मोहम्मद ने गरज कर कहा—'मन्सूर क्यों देर करता है, मार इस दगाबाज को, पहले औलिया और पीर बना और आज बहादुरशाह का पोता बनता है। अगर गिरोह की सरदारी तुम करना चाहो तो पहले अपनी तलवार से इन्हीं काफिरों के कुत्तों को रास्ते से साफ करो जो भौंक कर हमें डराते हैं।" कहते हुए मौलवी साहब ने चिल्लाकर नारा लगाया—"अल्ला हो अकबर! पाकिस्तान जिन्दाबाद!"

यह कूच का बिगुल था, मारकाट करने का संकेत था। भीड़ ने नारा लगाया और उसके साथ ही मन्सूर की तलवार ने एक ही झटके में अपने श्वसुर के झुकाये हुए शिर को भुट्टे की तरह काट कर फेंक दिया। वृद्ध की गर्दन से रक्त का स्रोत उमड़कर पाकिस्तान की नींव में पानी उड़ेलने लगा।

एक हृदय-विदारक चीख के साथ नूरुन्निसा अपने बाप के शव पर अचेत होकर गिर पड़ी।

मन्सूर ने नारा लगाया—"अल्लाहो अकबर! पाकिस्तान जिन्दाबाद।"

वृद्ध, अथवा कब्रस्तान के शाह साहब, अथवा अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के पौत्र बुलन्दअख्तर के शव और नूरुन्निसा को रौंदती हुई भीड़ आगे बढ़ गई।

हालिया

सभ्य संसार में प्रवेश करने का वह मेरा पहिला दिन था। एक रात पहिले मुझे स्वप्न में भी गुमान न था कि कल मेरे जीवन-स्त्रोत की प्रगति एक दूसरी ही ओर, नितांत अपरिचित धारा में, बहने लगेगी। सन् १६२१ के मई मास का सोलहवां दिन मेरे इतिहास में सबसे आश्चर्यमय था; उस दिन रात्रि के पिछले पहर मैं उठा, मुंह अंधेरे ही अपने साथी जवानों के साथ अंग्रेजी फौज पर छापा मारने के लिए, अदम्य उत्साह से, बढ़ने लगा। हम लोगों का रुपया खतम हो चुका था, बंदूकें बिगड़ गई थीं, और गोली बारूद बहुत ही थोड़ी शेष रह गई थी। हमें सभी वस्तुओं की आवश्यकता थी। इन को पूरा करने के लिये केवल एक साधन हमारे पास था—वह यह कि अंग्रेजी छावनी पर छापा मारा जाय, और लूट के माल से हम अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें।

पहिले हम लोगों का इरादा था कि रात्रि के पहिले पहर में धावा बोला जाय, किन्तु उन दिनों अंग्रेजी सिपाही रात्रि को ज्यादा होशियार और चौकन्ने रहते थे; इसलिए हमें छिप कर छापा मारने का अवसर बहुत कम मिलता था। ऐसी अवस्था में रात्रि का पिछला पहर हमारे काम के लिए उपयुक्त समझा गया, क्यों कि संतरी उस समय सतर्कता त्याग कर मीठी नींद की झपकियां लेने लगते हैं, और वे भी प्रातः काल के दीपक की भांति निष्प्रभ और अचैतन्य हो जाते हैं।

हम लोग ५० व्यक्ति थे। मेरे साथ हमारे बाप-भाई सब थे। मैं उस छोटी सेना का सेनापति था, क्यों कि मेरी बहादुरी की धाक मेरे साथी जवानों पर जमी हुई थी, और यह उम्मीद थी कि वर्तमान सरदार के बाद कबीले की सरदारी मुझे ही मिलेगी। मैं अपने भाइयों और कबीले के सारे जवानों में सबसे अधिक कर्मशील, वीर और चतुर था। मेरा निशाना सबसे सच्चा था, और मेरे मुकाबले में कोई भी अफरीदी नौजवान सामने न आता था। मेरे शरीर का गठन भी अन्य अफरीदियों के शरीर की गठन से भिन्न थी। मेरा शरीर पौने सात फुट लम्बा था, और मेरे सारे अवयव हृष्ट-पुष्ट थे। ताकत में मुझ से सब कोई हार मानते थे। आज तक जितने हमलों पर मैं गया, सब में हमारी ही जीत हुई थी। बिजली की तरह मैं अंग्रेजी सिपाहियों पर टूट पड़ता, बात की बात में दस-पंद्रह नौजवानों का गिरोह साफ कर देता, और उछल कर फौरन दूसरी हमला करने वाली टुकड़ी पर जा पड़ता। मेरा नाम अंग्रेजी छावनी का बच्चा बच्चा जानता था, और अफरीदियों की आंख का तो तारा ही था। अंग्रेज, हिन्दोस्तानी जाट और गोरखे पलटनिए जवान मेरे मुकाबले में आने से घबराते थे। मेरे सिर के लिए हजारों रुपयों के पुरस्कार घोषित हो चुके थे, लेकिन उन इनामों को जीत लेने की हिम्मत किसी भाई के लाल को न होती थी इन इनामों के विज्ञापन ने तो मुझे अधिक साहसी और उत्साही बना दिया था। स्फूर्ति मेरी रग रग से निकली पड़ती थी। जहां किसी अंग्रेजी पलटनियें को देखा, फौरन अपनी बंदूक का निशाना बनाया। इस तरह न मालूम कितने नौजवानों को सदा के लिए सुला चुका था। मेरे आतंक का सिक्का चारों ओर जमा हुआ था। इन्हीं सब कारणों से कबीले की सरदारी मुझे मिलने

वाली थी। तमाम अफरीदी जाति मुझे पहिचानती और मुझ से प्रेम करती थी। उसको मुझ पर गौरव था, नाज था। सैकड़ों अफरीदी बालाए मेरे साथ विवाह करने के लिए उत्सुक थीं, लालायित थी और मेरे बाप के पास न मालूम मेरी शादी के कितने पैगाम आचुके थे। उन सब में श्रेष्ठ और माननीय हमारे सरदार हाजी का था। हाजी मुहम्मद मेरे कबीले के सरदार थे। उनके केवल एक ही कन्या थी, पुत्र कोई न था। उनकी कन्या का नाम था हालिया। हालियां प्रात. काल के झांकते हुए दिन की तरह सुन्दर थी। अतीव सौंदर्यवती होने के अतिरिक्त वह भी असीम साहसी बालिका थी।

यों तो अफरीदी बालिकाएं स्वभाव से ही वीर तथा साहसी होती हैं, किन्तु हालिया में ये दोनों गुण विशेष रूप से थे। हालिया में क्रोध और मान की भी अधिकता थी, अपराध को क्षमा करना तो वह जानती ही न थी। एक बार भी जिसने हालिया को क्रुद्ध कर दिया, उसके लिए हालिया काल से भी अधिक भयावनी थी, और उसका अंत करके ही छोड़ती थी।

सरदार की एकमात्र कन्या होने के कारण कोई भी उसे छेड़ता न था और जिस किसी ने उसका अपमान किया, हालिया अपने ही हाथों से उसका सर्वनाश कर डालती थी। हाजी सरदार के पास उस व्यक्ति के मरने की खबर ही पहुंचती थी, न कि हालिया के अपमान की। हालिया की विशेष कृपा मेरे ऊपर रहती थी। वह मुझ पर जी-जान से आसक्त थीं, और सरदार की भी इच्छा थी कि हालिया का पाणिग्रहण मेरे साथ हो जाय। हम लोगों की मंगनी हो चुकी थी, और यह निश्चय हो गया था कि आगामी बसन्त ऋतु में हम दोनों का विवाह हो जायगा।

हालिया भी सदैव हम लोगों के साथ छापे में जाती थी। उसकी बन्दूक का निशाना उतना ही सच्चा था, जितना कि मेरा। हालिया में सब से अधिक खूबी यह थी कि वह हम सब से अधिक तेजी के साथ दौड़ती थी, दौड़ में उसका प्रतिद्वन्दी कोई दूसरा न था। कंकरीली, पथरीली जमीन पर दौड़ना उसके लिये उतना ही सहज था, जितना हरी हरी घास के मैदानों पर दौड़ना। जब हम लोग लूट का माल लेकर भागते थे, तब हालिया एक के पीछे रहकर भी हम सब से आगे हो जाती थी। उसका दौड़ना सांप की चाल की तरह टेढ़ा होता था, जिससे उस पर गोली का निशाना पड़ना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव था।

सोलहवीं मई के छापे में हालिया भी हमारे साथ थी। हाजी सरदार के बीमार हो जाने के कारण मुझे ही सेना के अधिनायक का पद ग्रहण करना पड़ा था। मुझे यह न मालूम था कि वह क्षणिक सरदारी अन्तिम सरदारी होगी। सरदार का पद मिलने के कारण मेरे अङ्ग-अङ्ग में स्फूर्ति बिजली की तरह समाविष्ट हो रही थी। हम लोग निःशब्द दौड़ते हुये अंग्रेजी छावनी के पास आ गये। किसी भी संतरी को हमारे आगमन की सूचना न थी। खड़े हुये सब झपकियां ले रहे थे। बात की बात में हम लोगों ने उन्हें बेबस कर दिया, और हमारी तलवारें उनके खून से रंगकर तारों के प्रकाश में चमकने लगीं। हम लोग आगे बढ़े, किन्तु यहां के पहरे वाले सिपाही जाग रहे थे। हम लोगों को आते देख उन्होंने गोलियां चला दीं, किन्तु हम लोग पहिले ही से होशियार थे, और किसी की गोली ने हमारे किसी जवान को आहत नहीं किया। अंगरेजी फौज में खबर हो गई कि अफरीदियों ने छापा मारा है। सैकड़ों आदमी बाहर निकल आये और

मशालें जलने लगीं। हम लोगों ने भी अपनी बन्दूकें तानी, निशाने साधे, और पहिली ही बाढ़ में पचास आदमी धराशाई किये। हम लोगों में से किसी का भी निशाना खाली न गया। पचास अंग्रेजी फौज के जवानों की लाशें गिर पड़ीं। उधर से भी बन्दूकें दगने लगीं, लेकिन हमारी फौज के कुल पांच जवान जख्मी हुये। हम लोगों ने फिर निशाने साधे, और इस बार भी उनके कई जवान गिर पड़े। हम लोग तेजी से आगे बढ़े। आगे बढ़ते देख अंगरेजी फौज के पैर उखड़ गये और भाग खड़ी हुई। मैं सब से आगे था और मेरे पीछे हालिया थी। हम दोनों एक खेमे में घुस गये। खेमा खाली था और उसमें बहुत-सा कपड़ा था। पास ही एक चारपाई पर बन्दूक पड़ी हुई थी और कारतूसों से भरी हुई पेटी भी। हालिया ने कारतूसों की पेटी गले में पहन ली और जल्दी-जल्दी कपड़ों का बण्डल बनाने लगी। मैं भी उसकी सहायता करने लगा। हमारे अन्य अफरीदी साथी भी लूट-खसोट करने लगे और कपड़ों का बण्डल लेकर भागने लगे। हम लोगों का ध्यान इस लूट-खसोट में था और उधर अंगरेजी फौज का एक दस्ता हम पर हमला करने के लिये आ रहा था। हम लोगों को तब मालूम हुआ जब उनकी बन्दूकों की एक बाढ़ हम पर दागी गई। हम लोगों को विश्वास था कि अंगरेजी फौज अब फिर न आयगी, परन्तु उस दिन उसके अचानक आ जाने से हम लोग घबरा गये और अपना-अपना लूट का माल लेकर भागने लगे। भागने वालों में हालिया सब से पहिले थी, किन्तु मैंने भागना उचित न समझा और अपने जवानों को बुलाकर लड़ने का हुक्म दिया। मेरा आदेश टालने का साहस किसी में न था और सब जवान इकट्ठा होकर गोलाबारी करने लगे। गोलियों के कारतूस हम लोगों के पास

काफी संख्या में आ गये थे, फिर हम लोग किसी तरह दबने वाले न थे। हमारी मार से अंगरेजी फौज के फिर पैर उखड़ गये और वे भागने ही वाले थे कि पूरी फौज आ गई और उसने हम लोगोंको चारों ओर से घेर लिया। हमारे भागने का द्वार बन्द हो गया और हम लोग जान पर खेल कर लड़ने लगे। अंगरेजी फौज हमें दबाती हुई हमारे पास आ रही थी। हम लोगों के लिये बन्दूकों से लड़ना असम्भव हो गया। हम लोगों ने अपनी तलवारें सूतीं और पैतरे बदल कर खड़े हो गये, फिर तुरन्त ही अंगरेजी फौज में पिल पड़े। सिर पर सिर गिरने लगे, लेकिन फिर भी हम लोगों को भागने के लिये सन्धि न मिली। कुमक पर कुमक उमड़ी पड़ती थी। अंत में हम लोगों के हाथ थक गए, बदन लोहू लुहान हो गया, और हमें अंगरेजी फौज के गोरखा जवानों ने बंदी बना लिया। हमारी सेना के तीस जवान काम आए, और बाकी कैद हो गए। भागने वालों में केवल हालिया ही भागकर बच सकी थी, शेष सभी बंदी थे।

हम लोगों को, और विशेष कर मुझको, पाकर अंगरेजी सेना में आनन्द छा गया उनको अपनी हानि भूल गई, और मुझे लेकर आनन्द करवे लगे। जिसने मुझे गिरफ्तार किया था, उसका नाम था सरदार गुरु-सेवक सिंह। वह पंजाबी सातवीं लैन के जमादार थे, और बड़े ही दिलेर जवांमर्द थे। जिस समय हम लोग कैद हुए, उस समय पूर्व दिशा से, पेशावर की जमीन की तरह, आकाश को लाल करते हुए सूर्य-देव निकल रहे थे। दिन फैलते फैलते हम लोग हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ कर बिलकुल निःशक्त कर दिए गए।

हम लोग यदि खेत रहते, तो हमें किसी को भी कुछ शोच न रहता, लेकिन यह बेबसी की अवस्था हमारा खून पानी–पानी किए देती थी। जोश खा-खाकर हम लोग छूटने का प्रयत्न करते, लेकिन बेबस होकर रह जाते। हमारी बेबसी देख कर अंगरेजी फौज कह कहा मार कर हंस रही थी। मैंने दो बार हथकड़ी तोड़ने का प्रयत्न किया और दूसरी चेष्टा में तोड़ ही डाली थी कि एक नए रस्सी के फंदे ने मुझे फिर बेबस कर दिया, और बात की बात में दूसरी हथकड़ी डाल दी गई। यही नहीं, बल्कि बड़ी बेदर्दी के साथ मेरे हाथ कस दिए गए। हथकड़ी के फौलाद की मोटी पत्ती मेरी कलाई के मांस को काटने लगी। मुझे असहनीय यंत्रणा होने लगी, फिर बंदूकों के कुंदों की मार ने तो मुझे बिलकुल अचेत कर दिया। कुंदे सहते सहते मेरा सिर घूमने लगा, और धीरे २ मेरे अंग-प्रत्यंग में शिथिलता दौड़ने लगी मैं नहीं जानता कि कब मैं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा, और फिर इसके बाद क्या हुवा।

जब मुझे होश आया, तो मैंने अपने को फौजी इजलास में पाया। मेरे शरीर से खून अब भी निकल रहा था, और कई जगह तो जमकर सूख गया था। मरहम पट्टी का कहीं नाम-निशान न था, हमारे दूसरे साथी भी मेरी तरह बेबस और जख्मी थे। उनकी भी परवा किसी ने नहीं की थी। उन कैदियों में मेरे दो भाई और बाप भी थे। वे तीनों मेरी बेबसी और दुर्दशा देख–देख कर आंसू बहा रहे थे। उनकी आंखों में आंसू देख कर मेरी गई हुई ताकत फिर वापस आ गई और मैं हंसने लगा। मेरी हंसी ने उनके जख्मी दिलों पर नमक का काम किया, वे और रोने लगे। उन्हें मालूम हो गया कि मेरी हंसी खाली उन्हें भुलावा देने के लिए थी, लेकिन

इस हंसी के भीतर मेरी कितनी यंत्रणाएं छिपी हुई थीं।

थोड़ी ही देर में फौजी इजलास में हमारा मुकदमा पेश हुव। हम लोगों पर कई अपराध लगाए गए। हम में एक एक आदमी उठाया जाने लगा, और जबरदस्ती खड़ा किया गया। सब को गोली से उड़ा देने की सजा दे दीं गई। सबके आखीर में मेरी बारी आई। अपने दूसरे साथियों की तरह मैं भी खड़ा किया गया। मेरे दोनों हाथ बधे हुए फौजी अफसर के सामने थे। अफसर खड़ा होकर मुझे ऊपर से नीचे तक देखने लगा–शायद मेरा कद्दावर शरीर देख कर उसे आश्चर्य होने लगा। मुझे देखते वह बिलकुल मेरे पास आ गया, मैं भी उसकी ओर घूरने लगा।

मेरे हाथ से खून अब भी निकल रहा था। हाथ का कपड़ा चिथड़े चिथड़े होकर गिर पड़ा था। मेरा नंगा हाथ उसके सामने था। उसने न जाने क्यों मेरा हाथ पकड़ लिया, और निकलते हुए खून को देखने लगा। न मालूम मेरे हाथों में क्या था कि उसकी आंखें मेरे हाथों पर जम गई। मेरे दाहिने हाथ पर अंगरेजी भाषा के तीन अक्षर गुदे हुए थे। उसकी आंखें उन्हीं तीन अक्षर पर स्थिर हो गईं! मेरी ओर सिर उठाकर फिर देखने लगा, और कुछ क्षण देख कर पीठ के पीछे देखने लगा। मेरी पींठ में चार अंगुल का एक गहरा निशान था। मेरे बदन का कपड़ा हटाकर वह उसे देखने लगा। निशान देखकर वह फिर मेरे मुंह की ओर देखने लगा मैं उसकी इस हरकत से परेशान हो कर उसे अपनी भाषा में गालियां देने लगा। मैं ही नहीं, इजलास के सब आदमियों को उसके इस कार्य पर आश्चर्य हो रहा था! थोड़ी देर मुझे देख कर वह अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। उसने मुझसे मेरी ही भाषा में पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है।"

मैंने गुस्से में कहा—"नाम पूछ कर क्या करोगे ? जो करना हो करो ?"

उसने फिर पूछा—"अपना नाम बताओ।"

मैंने अपना पीछा छुड़ाने की गरज से कहा—"इब्राहीम"

उसने फिर पूछा—"तुम्हारे बाप का नाम"

मैंने उत्तर दिया—"मुहम्मद शेख।"

उसने फिर पूछा—"तुम्हारा बाप क्या यहां मौजूद है ?"

मैंने अपने बाप की ओर संकेत करते हुये गुस्से से कहा—"हां, वह है।" उसने एक सिपाही से मेरे बाप को बुलवाया। मेरा बाप वापस लाया गया। उसने मेरे बाप से पूछा—"शेख मुहम्मद, मुझे मालूम हो गया है, यह तुम्हारा बेटा नहीं है, बल्कि अंगरेजी फौज के एक अफसर का लड़का है। देखो, ठीक-ठीक हाल बतला दो, अगर सच बोलोगे तो तुम्हारी जान बख्श दी जायगी।

मेरा बाप मेरी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद उसने कहा—"हां, यह मेरा अपना लड़का नहीं है। यह किसी फिरंगी का लड़का है। कोई सत्रह साल गुजरे, जब हम लोगों ने छापा मारा था और एक खेमे में इसको अकेला पाकर ले भागे थे। उस समय इसकी उम्र करीब चार या पांच बरस की थी। इसके बाद मैंने इसको अपना बेटा बना लिया और पाल-पोस कर अपने फन में होशियार किया है। यह बड़ा होनहार था, लेकिन अफसोस.........!"

इसके बाद मेरा बाप कुछ न कह सका और जमीन पर बैठ गया।

मेरे बाप की बात सुनकर वह अफसर मेरे पास आया और मेरा हाथ देखने लगा, जिस पर अंगरेजी भाषा के अक्षर गुदे हुये थे। मैंने भी चकित

होकर उसकी ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू भरे हुये थे। उसने धीरे २ मेरी एक हथकड़ी खोल दी और रस्सी खोलने लगा। रस्सी की ऐंठन खुल जाने से मेरे हाथ की पीड़ा कम हो गई। कुल इजलास उसके इस कार्य को आश्चर्य से देखने लगी।

अपने पास के अफसरों को बुलाकर उसने कुछ कहा। वे भी सब साश्चर्य आकर मुझे घेरकर खड़े हो गये और मेरे उसी हाथ को देखने लगे। इसी समय एक स्त्री भी आ गई और वह भी दूसरों की तरह मेरे हाथ को देखने लगी। मेरे हाथ को देखने के बाद ही उसने मेरी पीठ का कपड़ा उघारा और उसी घाव के निशान को देखने लगी, जिसको कुछ देर पहिले उस अफसर ने देखा था। निशान देखते ही वह मुझ से चिमट गई और अपने कलेजे से लगा कर रोने लगी। कुल इजलास वहां आकर खड़ी हो गई।

थोड़ी ही देर में दूसरी हथकड़ी भी खोल दी गई और मैं छूट कर स्वतन्त्र हो गया। इस समय मेरी अजीब हालत थी, मैं विस्मित चुपचाप खड़ा था। मेरी समझ में कुछ न आता था कि ये लोग क्या कर रहे हैं, और क्या करना चाहते हैं।

थोड़ी देर में जब सब हंगामा शान्त हुआ, तो उस अफसर ने मेरी ही भाषा में बड़े ही धीमे और कोमल स्वर में कहा—"चार्ली, तुम्हारा नाम इब्राहीम नहीं चार्ली है। तुम अफरीदी नहीं अंगरेज हो, मुहम्मद शेख के लड़के नहीं मेरे हो; और यह जो तुम्हारे सामने खड़ी हुई हैं, तुम्हें जन्म देने वाली तुम्हारी मां हैं। अभी तुम्हारे सामने मुहम्मद शेख कह चुका है कि तुम उसके बेटे नहीं किसी अंगरेज के हो, वह अंगरेज मैं हूं। जब तुम

चार वर्ष के थे तब मुहम्मद शेख तुम्हें लूटकर ले गया था। तुम्हें पाने के लिए मैंने बहुत कोशिशें कीं, लेकिन सब बेकार हुईं, और तुम्हारा पता न लगा। आज सत्रह साल से जिसको हम लोग मरा हुआ समझ रहे थे, वह जीवित निकला। तुम्हारे हाथ का यह गुदना और तुम्हारी पीठ का यह दाग इस बात का साक्षी है कि तुम्हीं मेरे खोए हुए चार्ली हो।"

यह कहकर वह अफसर चुप हो गया। मेरी मां मुझ से फिर लिपट कर रोने लगी। मेरी सारी स्फूर्ति चली गई थी। मैं एक विचित्र भूल भुलैया में पड़ा सोच रहा था। अन्त में थक कर मैं एक पास ही की कुर्सी पर गिर पड़ा और फिर मुझे चेत न रहा।

[२]

जमाने के साथ-साथ आदमी की तबियत भी बदलती है। जब किसी अतीत काल की घटना स्मरण करो तो वे विचार—जो किसी समय कौतूहल वर्द्धक अथवा भयकारक प्रतीत होते थे—अपना-अपना धर्म छोड़कर एक साधारण-सी घटना का परिचय देते हैं। इसी का नाम परिवर्तन है।

जिस दिन मुझे मालूम हुआ कि मेरा नाम इब्राहीम नहीं, चार्ली है, लूट-खसोट करने वाली अफरीदी जाति का नहीं, बल्कि संसार पर राज्य करने वाली अंगरेज जाति का हूँ, उस दिन मेरे विचारों का ओर छोर न मिलता था। जब मैं अपने को एक सजे हुये कमरे में बैठे पाता, और अपने निजी विचारों में डूब जाता, तो वह कमरा मुझे जेल के समान मालूम होने लगता, और बार-बार मेरे मन में यह इच्छा बलवती हो उठती कि चल कर उन पहाड़ी मैदानों में स्वच्छन्द घूमूं। किन्तु दूसरे ही क्षण मैं मजबूर हो जाता? घर से बाहर निकलने की मुझे आज्ञा न थी। यदि कभी बाहर

जाने भी पाता, तो कई आदमियों के साथ और वे मेरी सारी चेष्टाओं पर, गति-विधियों पर दृष्टि रखते थे। यही नहीं मुझे टेढ़े-मेढ़े अक्षरों का भी अभ्यास करना पड़ता था। मेरी शिक्षा भी आरम्भ हो गई थी और उसमें मेरा मन तनिक न लगता था।

इसके अतिरिक्त मैं सारे सभ्य समाज का खिलौना था। जहां मेरे उन्नत शरीर पर लोगों की दृष्टि अनायास ही जाती थी, वहीं पर विद्रूप के सस्मित चिन्ह भी उनके मुख पर दृष्टिगोचर होते थे और अपनी भाषा में, जिसको मैं कुछ भी न समझता था, कुछ कह कर आपस में हो-हो कर के हंसने लगते। उस समय मेरी उद्धत प्रकृति सजग हो जाती, जी यही चाहता था कि उनकी सारस जैसी गर्दन मरोड़ कर रख दूं। किन्तु मेरी मां मेरे मन के भाव समझकर तुरन्त ही मुझे अन्य स्थान में ले जाती और मुझे शान्त करने की चेष्टा करती थी। धीरे २ मुझ में सहनशीलता का भाव आ रहा था। जब्त करना मैं सीख रहा था। और मेरी मां की ओर मेरा मन अपने आप आकृष्ट हो रहा था। जिस समय वे कुर्सी पर बैठ कर मेरा हाथ पकड़ लेतीं, मेरे हाथों में माया और प्रेम की हथकड़ियां पड़ जातीं। जिस समय आर्द्र-लोचनों से मुझे निहारने लगतीं, उस समय तो मुझे यही मालूम होता था, मानो कोई जादूगर मुझे आंखों से वश में कर रहा है। मेरा सारा उद्धतापन अपने आप काफूर हो जाता। और जिस समय दोनों हाथ फैला कर मेरी ओर करतीं, मैं अपने आप स्वयं उनकी गोद की ओर खिंच जाता, दोनों हाथों से उन्हें पकड़ लेता और उसी समय मैं हरिण के बच्चे से भी अधिक सीधा और सरल हो जाता था। मैंने कई बार इस प्रश्न पर विचार किया और अब तक करता हूं कि ऐसा क्यों होता था? किन्तु

इसका उत्तर मुझे आज तक मेरे मन से नहीं मिला है। इस समय केवल उसकी मधुर स्मृति ही मेरे मन में अवशेष रह गई है, जो मेरे इस दुखमय जीवन की एकमात्र सहचरी है, मेरे जीवन का सन्तोष और आनन्द सब कुछ है।

एक दिन सन्ध्या हो रही थी, सूर्य धीरे २ पश्चिम दिशा में जाकर आकाश में आग लगाकर प्रहृष्ट मन से उसका जलना निरख रहे थे। कमरे में बैठे-बैठे मेरा मन भी अकुला गया था। आज न मालूम क्यों दिन भर हालिया की याद ने मुझे सता रक्खा था। बार-बार मेरा मन हालिया से मिलने के लिये बेचैन हो रहा था। और मैं सब को त्याग कर सुदूर उन्हीं चिर-परिचित पहाड़ी प्रान्तों में भाग जाना चाहता था। बार बार मेरे मन में आता कि उसी पुरातन उपत्यका की छोटी सी खोह में—जिसमें हम दोनों कभी-कभी दिन का काम समाप्त करके बैठा करते थे—जाऊं, और एक बार हालिया को फिर बुलाकर उसे प्यार करूं। उसके छोटे-छोटे किन्तु चमकीले और काले बालों पर हाथ फेरूं। वह मेरी गोद में पड़ी हुई मेरी ओर एकटक निहारे, और मैं भी उसकी ओर देखता हुआ अपना अस्तित्व भूल जाऊं, फिर उसे अपने हृदय से लगा लूं। दो तीन बार मैंने अपने कमरे से बाहर निकलने का प्रयत्न किया, किन्तु मेरी मां की सावधान आँखों ने मुझे फिर बांध कर बैठा लिया। मैं बैठ तो जाता था, लेकिन अपने भावों को दमन न कर सकता था। आंखों से निबल पर-वशता के चिन्ह प्रकट हो जाते थे और साथ ही मां की करुणा और अधिक हो जाती, और वे मुझे हृदय से लगाकर प्यार करने लगतीं। उस समय मेरा सारा दबा हुआ उन्माद आंसुओ के रूप में बाहर निकलने लगता, और मां उस समय पानी-पानी हो जाती थीं।

उस दिन मेरी ऐसी अवस्था देखकर मां ने करुण स्वर में पूछा—"चार्ली तू इतना दुख क्यों करता है ? बोल तुझे कौन सी हार्दिक यन्त्रणा है; जिसको तू प्रकाश नहीं करता ।" मुझे आये हुये लगभग ६ महीने हो चुके थे, और इस समय में मुझे अंगरेजी समझना और बोलना भलीभांति आने लगा था । संसार में ऐसा कौन पुरुष है, जो अपनी मातृभाषा को न समझ ले । नसों में दौड़ते हुए खून में उसका असर होता है, और कोई भी व्यक्ति अनायास ही अपनी मातृ-भाषा को सीख सकता है ।

मां की बात सुनकर मेरे मन में यह विचार आया कि लाओ सब भेद खोल दूं । साफ-साफ शब्दों में कह दूं कि मैं इस सभ्य संसार में नहीं रहना चाहता, चाहता हूं कि मैं फिर उन्हीं पुरानी चिरसंगी पहाड़ियों की खोहों में रहूं । स्वतन्त्र वायु-मण्डल में जाकर विचरूं और अपनी चिर-संगिनी हालिया के साथ पहाड़ी प्रांतों में कालक्षेप करूं । लेकिन न मालूम क्यों ये विचार मेरे मन में ही दबे रह गये, और मैं चुप होकर मां की ओर निहारने लगा ।

मां ने मेरी व्याकुल दृष्टि देखकर बड़े ही व्याकुल स्वर से कहा—"चार्ली तुझे कोई मनोवेदना सता रही है । अपनी मां से अपने हृदय का भेद नहीं कहेगा ? बोल तुझे कौन सा दुख है ।" एक बार मेरे मन में फिर विचार आया कि कह दूं और कहकर अपने हृदय का बोझ हल्का कर दूं, लेकिन दूसरे ही क्षण न मालूम क्या सोचकर मै फिर चुप रह गया । मेरी दृष्टि नत हो गई और मै अपने विचारों में डूब गया ।

मां ने सप्रेम मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा—"चार्ली, तू मुझे अपनी मां नहीं समझता । क्या तुझे वे दिन याद नहीं पड़ते, जब तू बाग

से दौड़ता हुआ आकर मेरे पैरों में चिपट जाता था और मैं तुझे गोद में उठाकर प्यार करती थी। उस समय तुझ से एक बड़ा भाई और था, नाम था उसका 'जान'। जान जब कभी तुझे मारता था, तो तू भागकर तुरन्त मेरी ही शरण में आता था। तू रो-रोकर जान की शिकायत करता था और मैं चुपचाप तेरी बातें सुनती थी। चार्ली, क्या तुझे वे दिन भूल गये, कहते कहते मेरी मां की आंखें अश्रुप्लावित हो गयीं।

स्मृति–पटल में विलुप्त हुई घटनायें—जो मेरे परम सुखद बाल्य-काल की थीं—सजग होने लगी। मेरी आंखों के सामने धूमिल प्रकाश में विगत धटनायें क्रमशः नाचने लगीं। उनमें पड़कर मैं अपनी वर्तमान दशा को भूल गया। हालिया को भूल गया, पेशावर की पहाड़ी जमीन को भूल गया, सब कुछ भूल गया, और जान की स्मृति ताजी हो गई।

मैंने अवरुद्ध कण्ठ से पूछा—"मां, जान का क्या हुआ।"

इस प्रश्न ने मां के बँधे हुये आवेग का बाँध तोड़ दिया। उसने अश्रु–पूर्ण नेत्रों से कहा—"जिस साल तुझको अफरीदी उठा ले गये थे, उसी साल जान भी तेरे शोक में रो-रोकर मर गया। जान मर रहा था, और तेरी याद कर रहा था। चार्ली, जान तुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। हाय, यदि आज के दिन जान जीवित होता, तो न मालूम उसको कितना हर्ष होता। चार्ली, क्या तुझे जान की याद पड़ती है। उस समय तेरी अवस्था चार वर्ष की थी। वह बिलकुल तेरे ही जैसा था। इस समय यदि वह भी जीवित होता, तो तुम दोनों को पहिचानना कठिन होता। शरीर के अवयवों और मुख की गढ़न बिलकुल एक दूसरे के अनुरूप थी। जब तू तीन बरस का था, तो तेरी पीठ में एक बड़ा विषमय फोड़ा

हुआ था, जिसको चीरना पड़ा था। जिस समय तेरा फोड़ा चीरा जारहा था, उस समय जान की उद्विग्नता देखते ही बन पड़ती थी। न मालूम उसने कितनी गालियां सर्जन को दीं, और रो-रोकर बार-बार यही कहता कि सर्जन मेरे प्यारे चार्ली को मार डालेगा।"

मां इसके आगे कुछ न कह सकीं, और फूट २ कर रोने लगीं। मेरी आँखों से भी तप्त स्नेह–जल गिरने लगा।

थोड़ी देर स्तब्ध रह कर मां फिर कहने लगीं—"एक दिन तुम लोग क्रीकेट खेल रहे थे, तुम लोगों के साथ दस-पांच लड़के और थे। उनमें विलियम नामक एक बालक बड़ा नटखट था, वह सब की अपेक्षा बड़ा था और साथ ही ताकतवर भी था। तुम उपद्रवी तो शुरू से ही थे। विलियम ने तुम्हें खिलाने से इनकार किया, तो तुमने गेंद उठाकर पीछे से उसके मार दिया। विलियम को यह बरदाश्त न हो सका, और उसने उठाकर तुम्हें पटक दिया। उस समय जान अपने को न संभाल सका, और वह विलियम के लिपट गया। जहां तक हो सका, जान ने उसको बहुत मारा और तब तक शोरगुल सुनकर हम लोग भी पहुंच गये। वहां जाकर देखा, तुम बेहोश पड़े हो और जान विलियम को मार रहा था। उस समय विलियम अपने बचाने का बराबर यत्न कर रहा था। मैंने बड़ी मुश्किलों से जान को विलियम से अलग किया। जान बराबर चिल्ला रहा था कि इसने चार्ली को उठाकर पटक दिया है, मैं भी इसको पटक दूंगा। बड़ी मुश्किलों से मैंने उसे शान्त किया। चार्ली, जान तुझे प्राणों से भी अधिक प्यार करता था।"

मां की बातें सुनकर मेरे मन में एक अपूर्व भ्रातृ-स्नेह उमड़ा, पड़ता था। इसके प्रथम मैंने कभी वैसा भाव अनुभव नहीं किया था। मैंने बड़े आवेग से मां का कण्ठ पकड़ कर कहा—"क्यों मां, जान का कोई फोटो है।"

मां ने मुझे पृथक करते हुये कहा—"हां, है। चलो ड्राइङ्ग रूम में टंगा हुआ है। देखोगे, आओ।"

हम दोनों कमरे से बाहर निकल कर ड्राइङ्ग रूम में गये। मां ने मुझे एक चित्र के सामने खड़ा करते हुये कहा—"देखो यही जान का चित्र है।"

मेरे सामने एक ग्यारह बर्ष के बालक का चित्र था। उसका चेहरा ठीक मेरे ही जैसा था। मैं एकटक उस चित्र की ओर देख रहा था।

मां उस समय भी रो रही थीं।

थोड़ी देर बाद कमरे से निकल कर मैं सन्तप्त मन से बाहर टहलने के लिये चला गया।

मां अन्यमनस्क होकर कहीं चली गयीं थी। इस समय मैं बिलकुल स्वतन्त्र था। मेरे मन में अनेक प्रकार के विचार उठ रहे थे। जान की कथा ने मेरे मन में विकलता उत्पन्न कर दी थी।

मैं जाकर एक बेंच पर बैठ गया और सोचने लगा। उस समय संध्या का धूमिल प्रकाश धीरे धीरे कृष्ण वर्ण होकर संसार को काला करने का यत्न कर रहा था। उस प्रकाश में किसी को पहचानना इतर मनुष्यों के लिये बिलकुल असम्भव था, किन्तु मैं अफरीदियों के बीच में रह चुका था। गाढ़ अन्धकार में भी मेरी दृष्टि भली भांति काम करती थी।

सहसा मेरी दृष्टि उठकर बाग की चहार दीवारी की ओर चली गई। उस ओर एक सफेद मूर्ति निस्तब्ध खड़ी हुई थी। मुझको उस ओर देखते ही उस मूर्ति ने इशारे से बुलाया। यह इशारा मेरा चिरपरिचित था। इस खास इशारे से हालिया ही सदैव मुझे बुलाया करती, जब कभी मैं अपने कबीले के मनुष्यों में बैठा होता था। आज उसी प्रकार का इशारा देखकर मेरा हृदय धड़कने लगा। मैं अपनी स्थिति भूल गया और बेतहाशा उस मूर्ति की ओर भागा। मुझे आते देखकर वह मूर्ति भी धीरे २ दूर हटने लगी। मैंने अपनी गति तीव्र की और साथ ही उस मूर्ति ने भी अपनी चाल में तेजी की। मैं ठहर कर उसकी ओर निहारने लगा। वह मूर्ति भी ठहर गई, और फिर उसी प्रकार का संकेत करने लगी। मैंने अपने बाग की चहार दीवारी को उल्लंघन करके धीमे स्वर में पूछा—"कौन, हालिया।"

उस मूर्ति ने कुछ न उत्तर दिया—केवल मेरे आने के लिये संकेत कर रही थी। मैंने अपने चारों तरफ देखा, कहीं कोई भी न था। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, केवल वही मूर्ति स्तब्ध होकर मेरे सामने खड़ी थी।

उस समय मेरे पास कोई अस्त्र भी न था। मैं बिलकुल निहत्था जाने में संकोच कर रहा था।

मुझे इस प्रकार हिचकिचाते देखकर उस मूर्ति ने कहा—"इब्राहीम! क्या इतनी जल्दी हालिया को भूल गये?"

यह तो मेरा चिरपरिचित स्वर था। हालिया ही थी वह! दूसरे ही क्षण मैं उसके पास पहुँच गया।

मैं उसको पकड़ कर हृदय से लगाने ही वाला था कि बीच ही में

हालिया ने रोक कर कुछ रोष-पूर्ण स्वर में कहा—"मुझे स्पर्श न करना खबरदार।"

मेरी सारी आशायें, सारी उमङ्गों पर पानी पड़ गया। मैं स्तब्ध होकर हालिया की ओर देखने लगा।

हालिया ने कुछ देर बाद कहा—"इब्राहीम तुम जानते हो, मैं यहां पर क्यों आई हूं?"

मैंने सिर हिलाकर उत्तर देते हुये कहा—"नहीं, मुझे नहीं मालूम। शायद तुम मुझे यहां से ले जाने के लिये आई हो।"

हालिया ने भ्रू कुञ्चित करते हुये कहा—"तुम्हारा अनुमान ठीक नहीं है इब्राहीम! हां, मैं तुम्हें यहां से ले जाने के लिये आई हूँ अवश्य, किन्तु जीवित नहीं, मृत। मैं तुम्हारा बध करने आई हूं। विश्वासघाती, तूने मेरी जाति में कलंक लगाया। मैं तेरा खून पान करूंगी और तेरे शरीर के खंड-खंड करके चील कौओं को खिला दूंगी। नराधम! मेरे अनन्त प्यार का यह परिणाम!"

मैं हालिया की प्रकृति से भली भांति अवगत था। मैं जानता था कि अगर हालिया ने सत्य ही मेरे वध करने का इरादा कर लिया है, तो मेरा अन्त निश्चय है। संसार की कोई भी शक्ति मुझे बचा नहीं सकती।

मैंने निरुपाय दृष्टि से हालिया की ओर देखते हुये कहा—"हालिया, मेरी प्राणेश्वरी, मैं तुम्हारे हाथों से मरने के लिये तैयार हूं।"

यह कह कर मैंने अपना सिर नत कर दिया। मैं प्रत्येक क्षण उसकी ठण्डी छुरी का वार अनुमान कर रहा था, किन्तु वार न होता था।

मैंने सिर उठा कर कहा—"क्यों हालिया, देर क्यों। मारो। मेरा

जीवन मेरे लिये स्वयं भार हो रहा है। मारो, मेरी सारी चिन्ताओं का अन्त हो जाय। अपनी प्यारी के हाथों से मरने में भी आनन्द है। मैं सहर्ष अपनी गरदन फिर झुकाता हूँ, लो, शौक से अपनी छुरी की प्यास मेरे गर्म खून से बुझाओ।" यह कहकर मैंने फिर अपना सिर नत कर दिया। उस समय सत्य ही मेरे मन में मरने की इच्छा बलवती हो उठी थी।

हालिया ने अपने वस्त्रों के भीतर से एक चमकती हुई छुरी निकाली और मेरी ओर तानी। मैंने अपना सिर और नत कर दिया।

किन्तु छुरी का वार मेरे ऊपर नहीं हुआ। हालिया ने छुरी फेंक दी, और वह एक पत्थर पर गिर कर झनझनाहट का एक शब्द करके चुप हो गई।

मैंने अपना सिर ऊंचा किया। हालिया की ओर देखा। हालिया ने अपना मुख ढक लिया था। वह धीरे २ पीछे की ओर हट रही थी।

मैंने उसके पास पहुंच कर कहा—'हालिया', हालिया रूक गई। स्थिर होकर मेरी ओर देखने लगी।

मैंने फिर कहा—"हालिया, क्या तू मुझे मारेगी नहीं।"

हालिया ने किंचित अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"इब्राहीम, मैं तुझे नहीं मार सकती। तू जा, आज मेरा और तेरा अन्तिम मिलन है। मैं कहां जाऊंगी, नहीं जानती। घर लौट कर नहीं जाऊंगी, क्योंकि अगर वहां जाऊंगी, तो मैं फिर जीवित नहीं बचूगी। मैंने सब के सामने तेरे मारने की प्रतिज्ञा की थी। अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति करके न जाऊंगी, तो तू जानता है, मेरे लिये मौत है। तुझ को मार डालना मैं बिलकुल सहज कार्य

समझती थी, लेकिन तेरे ऊपर मेरा हाथ नहीं उठता। यह मुझे आज मालुम हुवा। तेरे लिये अब भी मेरे दिल में अनंत प्रेम बाकी हैं। इब्राहीम, तू जा, मैं तुझसे आजसे मिलना नही चाहतीं। तू मेरी जाति का नहीं है। या अल्लाह। मैं न जानती थी कि जिसको मैं दिलोजान से प्यार करती हूं। वह मेरीशत्रु जाति का है। इब्राहीम तू हट जा मेरे सामने से।" हालिया कहते कहते निश्चेष्ट होकर बैठ गई।

उस समय मेरे मनकी अवस्था बड़ी ही शोक जनक थी। मैं रोम रोम से हालिया को प्यार करता था। इन छः महीनों में मैंने निरतंर, अहोंरात्र हालिया का ही ध्यान किया था। संसारमें यदिकोई वस्तु मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। तो वह हालिया थी। हालिया को इस प्रकार दुखी देख कर मेरे मन की दशा बड़ी ही शोचनीय हो उठी। मैं सब कुछ भूल कर उसके शरीर से लिपट गया। हालिया ने भी अपनी देह ढीली करदी। हम दोनों एक दूसरे के हृदय का स्पंदन सुनने लगे।

मैंने बड़े मधुर स्वर में कहा—"हालिया, मैं भी तेरे बिना जीवित नहीं रह सकता। आओ हम दोनों भाग चलें। पहाड़ी प्रान्तों में घूम घूम कर हम दोनों अपना जीवन व्यतीत करेंगे।"

मेरी बात सुनकर शायद हालिया को चेतहुआ। उसने मुझे दोनों हाथों सेदूर कर दिया मैने उसको ओर वेग से हृदय से लगानेका यत्न किया, किन्तु हालिया मुझ को छोड़ कर अलग खड़ी हो गई।

उसने धीमें किन्तु दृढ़कंठ से कहा—"नही इब्राहीम तुझे छूने तक का अधिकार अब मुझे नही है। तू विदेशी है, हमारे शत्रुओं की तू सन्तान है। तेरा खून हमारे खून से नहीं मिल सकता। अभी तू मुझे प्यार

करता है। और एक दिन तू मुझपर, अपने बच्चों पर छुरी तान कर खड़ा होगा, अगर तूने ऐसा न भी किया, तो तेरे बच्चे अपने भाइयों के साथ विश्वासघात करेंगे। नहीं, नहीं, तेरा खून हमारे खून में नहीं मिल सकता! असम्भव है, असम्भव। मैं तुझे भूल जाऊंगी और तू भी मुझे भूल जा, लेकिन कभी तू मेरे सामने न आना। तुझे देखकर मुझे अपने ऊपर क्रोध आता है। और साथ ही तुझ पर बड़ा क्रोध आताहै। मैं यही चाहती हूँ कि तुझ से मेरी भेंट न हो। यह समझ ले कि जितना मैं तुझे प्यार करती थी, उतना ही मैं तुझ से घृणा करती हूं। इब्राहीम, तू जा, अब मुझ से मिलने की चेष्टा न करना।"

यह कह कर हालिया जाने लगी। मैंने उठकर हाथ पकड़ कर कहा—"हालिया, तू मुझे अकेला छोड़ कर कभी न जाने पायेगी। अगर तुझे जाना ही है। तो पहिले मुझे मार डाल। मैं मरने के लिए तैयार हूं, लेकिन तुझे कदापि न जाने दूंगा।"

यह कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

मेरे हाथ पकड़ते ही हालिया सिंहनी की भांति तड़प उठी। उसने हाथ छुड़ाकर तीव्र स्वर में कहा—"एक विदेशी का इतना साहस कि वह मेरा हाथ पकड़े। तू सुअर है, मेरे लिए हराम है। मैं एक अफरीदी रमणी हूँ। तू मेरा, मेरी जाति का, मेरे देश का शत्रु है। कौन जानता है, एक दिन तेरे मन में वही भाव न आ जायेंगे, जो आज तेरे दूसरे जाति-भाइयों में हैं। यदि तेरे हाथ से या तेरे बच्चों के हाथ से मेरी जाति का अपकार हुआ, तो सारी दुनिया हालिया के नाम पर थूकेगी। हालिया का नाम मेरी जाति के लिए अभिशाप हो जायगा। मैं तेरी मुहब्बत में घुल-घुल कर भले ही

मर जाऊँ, लेकिन तुझे ग्रहण न करूंगी। अपने नाम पर थुकवाऊंगी नहीं। मैं वह काम नहीं करूंगी, जिसमें अंगुश्तनुमाई हो। मैं कहती हूं कि मैं तुझे प्यार करती हूं, लेकिन तेरे साथ कभी निकाह नहीं करूंगी। तेरे साथ क्या हालिया किसी के भी साथ निकाह नहीं करेगी। इब्राहीम, क्या इतने दिन मेरे साथ रहकर भी मुझे नहीं पहचाना।"

हालिया के स्वर में घृणा का किंचित आभास था।

मैंने भी कहा—"क्यों हालिया, क्या तूने भी मुझे नहीं पहचाना।"

हालिया ने उत्तर दिया—"मैं तुझे पहचानती हूं। यह मुझे विश्वास है कि तेरे हाथों से मेरी जाति का अपकार नहीं होगा, लेकिन उस खून का क्या होगा, जो तेरी नसों में दौड़ रहा है।"

मैंने उत्तर दिया—"मेरे खून में अब फिरंगी-जाति का असर नहीं है, यह तो अफरीदियों के अन्न-जल से बना है। इसमें तुम्हारी ही जाति का असर है। क्या तुझे मालूम नहीं कि मैंने अपनी तलवार से कितने फिरंगियों को मारा है। फिर तू मुझ पर यह दोष क्यों आरोपित करती है।"

हालिया कुछ देर चुप रही। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। मेरे मन में आशा की एक क्षीण रेखा दिखाई देने लगी।

दूसरे ही क्षण हालिया ने कहा—"नहीं इब्राहीम, मेरा तेरा मिलन असम्भव है। खुदा की मरजी नहीं है। यदि उसकी मरजी होती, तो तेरा जन्म-इतिहास इस तरह प्रकट न होता। तू हट जा, मेरे सामने से हट जा, नहीं तो........!"

मैंने बीच ही में बात काटकर कहा—"नहीं तो तेरी छुरी मेरे जिगर के पार हो जायगी। तो फिर तू करती क्यों नहीं। मैं तैयार हूं, तेरे इस काम से

मेरे सारे दुखों का अन्त हो जायगा । ले, अपना शिर नत करता हूँ, बार कर ।"

यह कहकर मैंने फिर अपना शिर नत कर दिया। हालिया ने फिर भी वार न किया।

हालिया के कंठ से एक रुद्ध-क्रंदन स्वर निकलने लगा। मैंने शिर उठा कर देखा, सचमुच हालिया रो रही थी। आज के पहिले मैंने कभी हालिया को रोते न देखा था। अदम्य उत्साह, हिंसा, रौद्र भीषणता में उसका नारीत्व सदा ढँका रहता था, लेकिन आज उसके नारीपन को देखकर मैं किंचित स्तम्भित रह गया। हालिया ने अपने अश्रुवों को पोंछते हुये कहा—"इब्राहीम, तू मुझे और न सता। मैं अब बरदाश्त नहीं कर सकती। मैं तुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूं, लेकिन तेरे साथ निकाह नहीं करूंगी। मैं अपने कबीले के सामने इस बात की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। जानते हो, प्राण जाने पर भी अफरीदी अपने बचनों से नहीं फिरते। जा, मुझे तू भूल जा, मेरी तेरी यह आखिरी मुलाकात है। या अल्लाह!"

कहते कहते हालिया चल खड़ी हुई, और बड़े बेग से दौड़कर न मालूम किस ओर चली गई। पहिले तो मैं बिलकुल स्तंभित खड़ा रहा। कुछ देर बाद मेरी चेतना सजग हुई। मैं भी हालिया को पकड़ने के लिए दौड़ा। घोर निविड़ अंधकार था, कहीं किसी ओर कुछ दिखाई न देता था। हालिया के पद शब्द भी उस निर्जनता में विलुप्त हो गये थे। फिर भी मैं एक ओर को भागा, भागते हुए मेरे पैर में एक पत्थर की बड़े जोर की ठोकर लगी, और मैं गिर पड़ा। इसके बाद फिर क्या हुआ, नहीं मालूम।

(३)

सभ्यता धीरे धीरे मेरे हृदय में घर करने लगी। उपर्युक्त घटना को बीते हुए लगभग ७ वर्ष हो गए। हालिया के फिर दर्शन नहीं हुए। यह नहीं कि मैं हालिया को भूल गया था, या उसकी स्मृति मेरे मन में कभी सजग न होती थी, किन्तु फिर भी मैं अपने समाज के बंधनों में धीरे २ जा चुका था। मेरे पिता का पेंसन का समय निकट था, और मेरी मां यह सोच रही थीं कि शीघ्र ही हम लोग अपनी जन्म भूमि' इङ्गलैण्ड, को प्रस्थान करें। जब कभी मां इङ्गलैण्ड का वर्णन करने बैठतीं, तो फिर उसकी प्रशंसा में झड़ी बांध देतीं, और उनकी कथा का फिर अन्त न था। मेरे मन में धीरे २ अपनी मातृ भूमि के लिए अनुराग उत्पन्न हो रहा था। स्मृति-पटल में कुछ धुंधला सा, अत्यंत अपरिष्कृत मातृ-भूमि का प्रकाश पड़ता, और क्षण मात्र में ही वह फिर विस्मृति के घने अंधकार में बिलुप्त हो जाता।

सितम्बर की चौदह तारीख थी। उस दिन आकाश बड़ा ही मनोहर था। सुन्दर नील गगन का छत्र पृथ्वी पर तना हुआ था। पेशावर नगर सितम्बर में बड़ा ही रमणीक हो उठता है। पृथ्वी धानी पोशाक पहिन लेती है, और बीच बीच में चमकती सफेद चट्टानें जरदोजी के काम का स्मरण दिलाती हैं। मैं भी अपनी चिन्ताओं में विभोर प्रकृति के उस मनोहर वेष को मलिन दृष्टि से देख रहा था।

इसी समय मेरी प्रणयिनी मिस एडमंड ने आकर मेरे स्कंध पर अपना हाथ रख दिया, मिस एलिनर एडमंड पूना रेजिमेन्ट नं० २ के कैप्टन

एडमंड की एक मात्र कन्या थीं। इधर जब से सीमा प्रांत में अफरीदियों का उपद्रव विशेष रूप से बढ़ गया था, तबसे अंगरेज सरकार को भी सतर्कता अवलम्बन करना अनिवार्य हो उठा था, और आगरे से सीमा प्रांत की रक्षा के लिए पूना रेजिमेन्ट नं० २ बुलाया गया था। कैप्टन एडमंड बड़े ही कुशल और चतुर व्यक्ति समझे जाते थे। सरकार ने इन्हीं को मनोनीत करके मेरे पिता की सहायता के लिए भेज दिया था।

कैप्टन एडमंड के एक कन्या के अतिरिक्त कोई दूसरी संतान नहीं थी। जिस समय मेरे पिता ने मेरी मां और मेरा परिचय मिसेज और मिस एडमंडसे करवाया था, उस समय मिस एडमंड ने मेरी ओर कौतूहल पूर्ण दृष्टि से देखा था। उसकी उस कौतूहल मय दृष्टिके सामने मेरी आंखें अपने आप नत हो गई थी। मेरे अतीत जीवन के इतिहास पर उस दिन मुझे लज्जा मालूम हुई—इसके पहले मैं उसे गौरव के साथ स्मरण करता था, और अपने सामने इतर जाति भाइयों को तुच्छ दृष्टि से देखता था—किन्तु न मालूम क्यों उस दिन मुझे झेंप जाना पड़ा, और थोड़ी ही देर में उनका साथ छोड़ कर एकांत सेवन करने के लिए चला गया।

किन्तु मिस एडमंड के प्रति मैंने एक प्रकार का आकर्षण भी अपने मन में अनुभव किया था। उन लोगों को छोड़कर चला तो आया था, लेकिन मेरा मन बार २ उनके पास जाने को हो रहा था। मन में साहस एकत्रित करके, लजाते २ उनके पास गया।

मुझे आया देखकर मेरी मां ने किंचित मधुर मुस्कान के साथ क्षमा मांगते हुए मिसेज़ और मिस एडमंड से कहा—"अपने मन में कुछ ख्याल न कीजियेगा, मेरा चार्ली बड़ा ही लजीला है।" फिर मेरी ओर देखकर

कहा—''चार्ली इतना ज्यादा शरमाते क्यों हो, जाओ, मिस एडमंड को लेकर अपना चिड़ियाखाना दिखला लाओ।'' यहां पर यह भी कह देना उचित होगा कि लड़कपन से मुझे छोटे छोटे जानवरों से बेहद प्रेम था, और मैं सदा कोई न कोई पक्षी या जानवर पाला करता था। जबसे मेरे प्रकृत माता-पिता मिले, तब से तो मेरे पास एक छोटा मोटा 'ज़ू' या अजायब घर हो गया था। नाना देश के पशु पक्षी मेरे यहां पले थे। उन्हीं को दिखला लाने के लिए मां ने मुझसे कहा था।

मिस एडमंड को अपने साथ ले जाने में मुझे बड़ी लज्जा लगती थी, लेकिन फिर भी मैं उसे ले जाना चाहता था। मैं चुपचाप जा रहा था, और वह मेरा अनुसरण कर रही थी। उस समय उसकी अवस्था लगभग १६ वर्ष की थी। उसके अंग के प्रत्येक अवयव परिपूर्ण थे, किन्तु बाल्य-सुलभ चपलता अब भी अवशेष थी। वह कनखियों से बार २ मेरी ओर निहारती थी, और जहां हमारी और उसकी दृष्टि मिलती मेरी आंखें स्वत: नत हो जातीं, और गालों में तप्त रक्त तेजी से दौड़ने लगता। वह भी शायद मेरे मन का भाव समझ जाती और तुरंत दूसरी ओर निहारने लगती थी।

बस, उस घटना के उपरांत ही हम दोनों का सौहार्द बढ़ने लगा। वह हमारे यहां नित्य प्रति आती, और मेरी भी लज्जा क्रमश: कम होकर अब बिलकुल चली गई थी। मैं उससे दिल खोलकर बातें करता था। उसे पहाड़ी प्रांतों की सैर कराता था, और अपने अतीत जीवन की घटनायें सुनाया करता था। एलिनर स्वयं उन घटनाओं को सुनना चाहती थी, और अगर मैं उससे न कहता, तो वह अभिमान से अपना मुख फिरा लेती, और

फिर बात न करती थी। हारकर उसे प्रसन्न करने के लिए किसी घटना का वर्णन करने लगता।

इतना होते हुए भी मैं अपनी हालिया को भूला न था। जिस कदर मैं हालिया को प्यार करता था, वह सब मैंने एलिनर से कहा था। जिन जिन स्थानों में, कंदराओं में, पहाड़ी खोहों में, निर्जन घाटियों में मैं हालिया के साथ घूमा करता था, उन सब जगहों में मैं आज कल एलिनर को लिए हुए घूमता था! एलिनर को इसमें आनंद मिलता था। हालिया की कहानी उसे सुखी करती थी। वह हालिया को देखना चाहती थी, और मैं भी हालिया से मिलने के लिये उत्सुक था, किन्तु हालिया का चिन्ह तक देखने में न आता था।

यद्यपि मैंने एक समय इस बात का निश्चय कर लिया था कि हालिया के अतिरिक्त मैं किसीं से बिवाह न करूंगा, फिर भी आज कल एलिनर के अबाध संसर्ग से मेरी प्रतिज्ञा में शिथिलता आ रही थी। एलिनर भी मेरी ओर आकृष्ट हो रही थी, और मैं भी उत्तरोत्तर उसके प्रेम–पाश में बंधा जा रहा था।

उस दिन सितम्बर की १४ तारीख को मैं कुछ अन्यमनस्क था। हालिया और एलिनर दोनों मेरे हृदय स्थल में लड़ रही थी। हालिया की उग्र, किन्तु प्रेम मूर्ति का एक अद्भुत आकर्षण था, तो दूसरी ओर शांत और माया-पूर्ण एलिनर का प्रेम पाश था। हालिया मेरे लिए स्वप्न की मूर्ति थी, किन्तु एलिनर जाग्रत सत्य थी। एक का मिलना असम्भव था, तो दूसरे का प्राप्त होना साध्य था। एक में असंख्य चितायें थीं—अनंत दुख था, किन्तु उसमें भी एक प्रकार की संतुष्टि थी, शांति थी, और दूसरी में

प्रेम था, सुहाग था और आनंद था—किन्तु उसके अंत में एक तड़पन थी एक अशांति थी। एक तपस्या थी, तो दूसरी तपस्या का उप संहार थी। मैं स्थिर न कर पाता था कि किसको ग्रहण करूं। इन्हीं चिंताओं में विभोर था कि एलिनर ने आकर मेरे कंधे पर हाथ रख दिया।

मैं चौंक पड़ा। घूमकर पीछे देखा—सामने चिर परिचित हास्य मंडित एलिनर खड़ी हुई मुस्किरा रही थी।

एलिनर ने अपने हाथ से मेरा कंधा दबाते हुये कहा—"इतनी तल्लीनता से क्या सोच रहे हो?"

मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"कुछ नहीं।"

एलिनर ने अविश्वास पूर्ण स्वर से कहा—"हां, कुछ नहीं। क्या अपनी हालिया के बारे में सोच रहे हो।" यह कह कर एलिनर हंस पड़ी।

एलिनर को आशा थी कि मैं भी हसूंगा, किन्तु न मालूम क्यों हंसने को जी न चाहा, और हँसी मेरे मुख पर नहीं आई।

मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"एलिनर...............।"

लेकिन आगे कुछ न कह सका। सहसा मेरी जबान पर ताला पड़ गया।

एलिनर ने उत्सुकता से मेरी ओर देखते हुये कहा—"कहो, क्या कहते थे। कहते २ रुक क्यों गये?"

मैंने एक मलिन हंसी के साथ कहा—"हां, कहूँगा, लेकिन अभी नहीं।"

एलिनर ने तिरछी चितवन से मेरी ओर देखते हुये कहा—"वह कौन शुभ घड़ी होगी?"

मैंने उसी भांति शुष्क कंठ से उत्तर दिया—"अभी समय नहीं आया। एलिनर, देखो आज की संध्या बड़ी सुहावनी है। बरसात खत्म हो गई, और पहाड़ों ने हरी पोशाक पहन ली। चलोगी घूमने ?"

एलिनर और मुझमें बड़ी घनिष्टता हो गई थी। मैं उसे मिस एडमंड न कहकर एलिनर ही कहा करता था, और वह भी मुझे चार्ली कहती थी।

एलिनर ने प्रहृष्ट मन से कहा—"हां, चलूंगा। मेरे मन मे भी आता है कि इन्हीं स्थानों में घूम आऊं, लेकिन तुम क्या चलोगे ? तुम तो कुछ सुस्त देख पड़ते हो। तुम्हारी चिन्ताओं में मुझे शरीक होने का अधिकार नहीं है ?"

मैंने कनखियों से देखा—एलिनर के मुख पर विषाद के चिन्ह थे। न मालूम क्यों मुझे प्रसन्नता हुई। प्रेमी प्रेमिका के विषाद मे प्रसन्न होता है। वाह रे प्रेम !

मैंने अपने मुख पर प्रसन्नता का भाव लाने की चेष्टा की, और मंद मुस्कान के साथ कहा—"नहीं, मैं तो खिन्न नहीं हूं। हां, तुम्हारे न आने से जरूर कुछ व्याकुल था। लेकिन अब वह व्याकुलता भी चली गई है। तुम्हें देखकर मन अपने आप प्रसन्न हो जाता है।"

एलिनर ने मेरी ओर देखा और हंस पड़ी, मैं भी जरा संकुचित हो गया।

एलिनर ने हंसते हुए कहा—"खुशामद करना कब से आ गया। यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि अफरीदी भी खुशामद करना जानते हैं। अभीं तक तो मैं उन्हें निरा असभ्य और जंगली समझती थी, लेकिन अब तो देखती हूँ कि वे भी सभ्य हो रहे हैं।"

एलिनर मुझे अक्सर अफरीदी ही कहती थी। उसको मुझे अफरीदी कहने में आनंद आता था, और मैं भी प्रसन्न होता था। मेरे अफरीदी जीवन का चित्र मेरी आंखों के सामने आ जाता था।

एक फूल तोड़कर एलिनर को देते हुये मैंने कहा—"यह भी तुम्हारी कृपा का फल है कि एक मूर्ख, असभ्य अफरीदी सभ्य तो हो गया। अच्छा, अब चलना चाहिये। मां से कह दे, और अपनी कार भी ले ले, जिससे लौटने में आसानी हो।"

हम दोनों हंसते हुए बंगले की ओर चले। द्वार पर ही मां खड़ी हुई थीं। वह हम लोगों को आते हुए देखकर आगे बढ़ आईं।

उन्होंने पास आकर कहा—"लौटे कहां जा रहे हो तुम लोग।" आज देखो कितनी ठंडी हवा चल रही है। कमरों में तो गरमी होगी। आओ, चलो, मैं भी बाग की ओर चलती हूं।"

मैंने हंस कर कहा—"हम लोग घूमने जा रहे हैं। कार लेने आये हैं।"

मां ने उत्सुकता से पूछा—"कहीं जा रहे हो।"

मैंने जवाब दिया—"जरा यों ही पहाड़ी हवाखाने। एलिनर को जरा घुमा लाऊं, तुम क्या कहती हो ? चलोगी।"

मां ने एलिनर की तरफ एक मन्द मुस्कान से कहा—"देखा, यह अभी तक अफरीदी ही है। जब देखो, पहाड़ों पर जाने के लिए तैयार रहता है। लेकिन, शाम होने आ रही है, अब कहां जाओगे। शाम को उन पहाड़ों पर घूमना आपत्ति से खाली नहीं है। यह अफरीदी हमारी जान के भूखे हैं, और इसके अतिरिक्त ये लोग आज कल उपद्रव भी मचा रहे हैं। अगर

किसी ने वार किया तो फिर क्या होगा, आज नहीं, कल जाना।"

एलिनर ने मुस्काते हुये कहा—"अफ़रीदियों से डरने की हमें जरूरत नहीं है। उनका सरदार तो हमारे साथ है।"

यह कहकर वह हंस पड़ी, और मां ने भी उसका साथ दिया।

एलिनर ने फिर कहा—"हम लोग ज्यादा दूर नहीं जायंगे, अभी अभी, सूरज डूबने के पहिले ही, आ जायगे। घर में बैठे २ जी घबरा गया है।"

मां ने सस्नेह हमारी ओर देखते हुए कहा—"अच्छा जाओ, बहुत दूर मत जाना। शाम होने के पहिले ही लौट आना। और इस जंगली पर अपनी नजर रखना, यह कहीं चला न जाय, और न इसके कहनेमें आना।"

एलिनर हंसने लगी, और मैं मोटर लेने चला गया।

मोटर के आते ही एलिनर उस पर बैठ गई, और हम दोनों वायु वेग से शहर के बाहर जाने लगे।

[४]

मोटर इस वक्त ५० मील की रफ्तार से जा रहा था। मेरे पास ही एलिनर बैठी हुई थी। मोटर इतनी तेजी से जा रहा था कि कहीं कहीं पर किसी बड़े पत्थर की ठोकर से उछल जाता था। मुझे भी उस दिन बड़ा आनन्द मिल रहा था। तीसरे पहर की जो व्याकुलता थी, वह चली गई थी, और अब उसकी जगह प्रसन्नता छाई हुई थी।

मैंने मोटर का स्टीयरिंग व्हील एलिनर को देते हुए कहा—"आज क्या मोटर न चलाओगी?"

एलिनर ने स्टीयरिंग पकड़ कर कहा—"इतनी तेज में नहीं चला सकती। मैं तो सिर्फ १० मील की रफ्तार से चलाऊंगी। इसका बैलेन्स ठीक रखना बड़ा मुश्किल है।"

एलिनर ने मोटर की गति मन्द कर दी। अब हम लोग धीरे धीरे जाने लगे। ठंडी २ वायु के थपेड़े हमें प्रसन्न कर रहे थे।

मैंने अपना हाथ एलिनर के कंधे पर रखते हुये कहा—"एलिनर, चलो आज तुम्हें उस घाटीमें ले चलूंगा, जहां पर मैं हालिया के साथ जाकर बैठा करता था। आज तुम्हें वह पत्थर भी दिखलाऊंगा, जिस पर हम लोग बैठ कर बातें करते थे।"

एलिनर ने प्रसन्न मन से कहा—"हां, हां, जरूर देखूंगी। मालूम होता है, तुम यही दिखाने के लिये मुझे यहां लिवा लाये हो।"

मैंने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—"हां, दिखाने के लिये तो लिवा ही लाया हूँ, लेकिन वहां चलकर मैं तुम से एक गुप्त भेद भी बतलाऊंगा।"

एलिनर ने उत्सुक कंठ से पूछा—"क्या बतलाओगे।"

मैंने कुछ उत्तर न दिया, और स्टीयरिंग अपने हाथ में पकड़ लिया। एलिनर ने पूछा—"क्या तेज चलाओगे।"

मैंने एक्सीलेटर दबाते हुये कहा—"हां, वहां पर जल्दी पहुंचना चाहिये, क्योंकि वह स्थान अफरीदियों के दुर्ग के मध्य भाग में है। वहां तक हमारा मोटर जा नहीं सकता—अभी थोड़ीही दूर रास्तेमें इसे कहीं रख देना पड़ेगा, और फिर मैं तुम्हें टेढ़े-मेढ़े रास्तों से ले चलूंगा, लेकिन एलिनर, वहाँ पर चलना निरापद नहीं है।"

एलिनर ने किंचित वक्र दृष्टि से मेरी ओर देखा—उसमें साहस था, और अपनी शक्ति पर अचल विश्वास था।

एलिनर ने कहा—"क्यों क्या मुझ में जाने की शक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त, जब तक तुम मेरे साथ हो, मैं भय जानती नहीं। अभी उस दिन तुमने उन चार अफरीदियों से मेरी रक्षा की थी। मैं उस घटना को भूली नहीं हूं। एक अकेले तुम्हारे ही साहस और पराक्रम का फल था, जो उस दिन मेरी रक्षा हो सकी थी।"

कहते कहते एलिनर ने मेरा हाथ पकड़ लिया। इस समय उसके हाथ गरम थे, और उनसे विद्युत्धारा प्रवाहित होकर मेरे शरीर में प्रवेश कर रही थी। एक गुलाबी सुरूर चढ़ रहा था, रोमांच हो रहा था, और मैं बिलकुल अवश हो गया। जो आनंद मुझे हालिया के कर-स्पर्श से प्राप्त होता था, आज वही आनन्द पाकर मेरा मन मेरे अधिकार से बाहर हो गया। मैं भी उसका हाथ दबाने लगा, और एक अर्धनिमीलित दृष्टि से एलिनर की ओर देखा—उसके गुलाबी कपोल ग्रीवा तक लाल हुये जा रहे थे, और शरीर धीरे २ कांप रहा था, आंखें नशे के भार से झुकी पड़ती थी, और हृदय का स्पंदन बड़े वेग से हो रहा था। मुझे भी होश न था। मोटर उसी वेग से जा रहा था, आगे मोड़ था। कुछ दिखाई न पड़ता था। सारा संसार एक धुंधला स्तूप सा दृष्टिगोचर होता था। सहसा एलिनर चिल्ला उठी। मेरा नशा उतर गया। आंखें खोलकर देखा, आगे पहाड़ी हमारा रास्ता रोके खड़ी थी, और मोटर मस्त सांड़ की तरह उससे अपनी शक्ति आजमाने ही वाला था। मैंने स्टीयरिंग घुमाते हुये चारों ब्रेक पूरी शक्ति से दाब दिये।

भगवान की कृपा से मोटर तत्त्वण वहीं उछल कर रुक गया, और रुकते २ पहाड़ी से टकरा ही गया, लेकिन कुछ विशेष हानि नहीं हुई। एलिनर के मुख से हर्ष ध्वनि निकल पड़ी। मौत के कराल मुख से हम बाल-बाल बच गये। मनको कितनी प्रसन्नता मिली। मौत के मुंह से निकल कर आने में किसको प्रसन्नता नहीं होती? एलिनर ने मुझे अपने दोनों हाथोंसे मुझे अपने आलिंगन पाश में बांध लिया, और मेरे मस्तक पर एक प्रेम-चिह्न अंकित कर दिया। वही एलिनर का प्रथम प्रेम-चिह्न था।

हम दोनों मोटर से उतर पड़े, एक ने दूसरे को देखा—नीरव भाषा में दोनों के नेत्र बातें करने लगे। एलिनर इस समय खड़ी थी। शरीर बेंत की तरह कांप रहा था। लज्जा से सारा मुख-मंडल संध्या की लालिमा की तरह लाल हो रहा था। उस दिन शाम को एलिनर कैसी सुन्दरी थी। अस्त होता हुआ सूर्य अपनी लाल किरणें एलिनर के मंडलीकृत कपोलों पर फेंक कर उन्हें लाल बना रहा था। सर्वत्र नीरवता थी। मेरे सामने मेरी आराध्य देवी भुवन मोहन रूप से खड़ी थी। सब भूल गया, संसार को भूल गया, हालिया को भूल गया, अपनी प्रतिज्ञा भूल गया। नितांत अवश होकर घुटनों के बल गिर पड़ा, और एलिनर का दाहिना हाथ पकड़ कर उसकी अंगुलियों को अपने मुख से लगाकर उसकी ओर निहारने लगा। मेरे मन में आवेग उठ रहे थे, प्रेम-भिक्षा मांगना चाहता था, लेकिन शब्द मुंह से निकलते ही न थे। उमड़ते हुये भावों ने मेरा गला दाब रक्खा था, और एलिनर—एलिनर का मुख नत था, दृष्टि नत थी, और हाथ कांप रहा था। वह भी कुछ सुनने के लिये आकुल थी।

मैंने अस्फुट स्वर में कहा—"एलिनर, प्राण प्रिये एलिनर, मैं तुमको

प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूं। क्या मेरा प्रेम स्वीकार करोगी ? क्या तुम मेरी पत्नी बनना स्वीकार करोगी ?"

एलिनर प्रेमावेग से कुछ उत्तर न दे सकी। उसकी आंखें और नत हो गईं, हाथ और वेग से कांपने लगा, और कपोल लोहू-लुहान हो उठे। भगवान सूर्य उसी समय एक पहाड़ी की ओट छिप गये। मुझे उत्तर मिल गया, मैंने उठकर एलिनर को अपने आलिंगन पाश में बांध लिया, और उसके अरुण कपोलों पर, उन्नत ललाट पर, अपने प्रेम-चिह्नों की मुहर छापने लगा। एलिनर भी सब कुछ भूल कर सवेग मेरे कंठ से लिपट गई, और वह भी मेरे चुम्बनों का उत्तर देने लगी। अभी उस आनन्द का प्रारम्भ ही था, सुरा प्याला होठों से लगाया ही था कि मेरे हाथ से गिर पड़ा। एक बड़े पत्थर की आड़ से कुछ खड़खड़ाहट हुई, और एक बुरके वाली स्त्री ने वायु वेग से आकर एलिनर की पीठ पर बड़े वेगसे छुरा मारा। यह सब क्षण भर में ही हो गया, मैं देखता हुआ भी कुछ न कर सका। एलिनर के मुख से केवल एक चीख भर निकली, और उसकी देह निर्जीव की भांति मेरे वक्षस्थल पर अचेत होकर ढुलक गई। बुरके वाली स्त्री ने मेरे ऊपर वार नहीं किया। रक्त से सना हुआ छुरा आकाश की ओर उठाकर नाचने लगी।

शीघ्रता से एलिनर को जमीन पर लिटाकर मैं उस बुरके वाली की ओर बढ़ा। मुझे अपनी ओर बढ़ते देखकर उसने अपना बुरका हटा दिया। मेरे सामने खूनी हालिया खड़ी थी। मैं आगे बढ़ न सका, मेरे पैर वहीं पर स्तंभित हो गये।

हालिया ने भीषण स्वर में हँसकर कहा—"फ़िरंगी, धोखेबाज फिरंगी, क्या तू भी मरना चाहता है। आह, आज कितना आनंद मिला। आज सात साल से तुम लोगों की प्रेम-लीला देख देखकर मन ही मन कुढ़ रही हूं। आज मेरे दिल की आग बुझी, और बरसों से प्यासे छुरे की प्यास मिटी, और मेरी भूख भी शान्त हुई।" यह कहकर हालिया मेरी एलिनर का तप्त रक्त, जो छुरे पर लगा हुआ था, पान करने लगी। वह दृश्य देखने की ताब मेरे हृदय में न थी। मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं। हालिया अमानुषिक स्वर से गाने लगी। हाय रे राक्षसी हालिया!

हालिया ने मेरा हाथ पकड़ लिया, ठीक उसी तरह जिस तरह कोई एक निर्जीव खिलौने का हाथ पकड़ लेता है। सत्य ही उस समय मैं शक्ति-हीन था। मेरे तंतुओं की सारी शक्ति अदृश्य हो गई थी।

हालिया ने मुझे हिलाते हुये कहा—"फिरंगी, देखा तूने। अफरीदी कन्या को धोखा देने का मजा मिला। देख, तेरी प्रणयिनी कैसी सुख-शय्या पर लेटी हुई है। अभागिनी को क्या यह नहीं मालूम था कि इब्राहीम मेरा है? उसके हृदय को, प्रेमको, मेरे जीवित रहते दूसरा कोई नहीं पा सकता। तुच्छ अपदार्थ कीट का इतना साहस कि अफरीदी राजकुमारी का भाग्य अपहरण कर सके। उसका खून चूस ही लूंगी, आज चूस ही लिया।" मैंने आंखें खोलकर देखा—हालिया के मुख और गालों पर खून लगा हुआ था और वह फिर उसी रक्त रंजित छुरे को चूस रही थी। भय और घृणा से मैंने अपनी आंखे फिर बंद कर लीं।

हालिया ने फिर मेरे पास आकर कहा—"इब्राहीम, नहीं, अब मैं तुझे इब्राहीम के नाम से न पुकारूंगी, तू तो वास्तव में फिरंगी है, झूठ बोलना,

धोखा देना तो तेरी जाति का गुण है। क्या तू मेरे स्वभाव से परिचित नहीं था। तू जानता था कि हालिया साया की तरह तेरे साथ २ घूमती है। तेरी सारी हरकतों पर नजर रखती है। मैं यहां पर तेरी जुदाई में मरूं, और तू मजे उड़ाये, यह कब मुमकिन है। तू मेरा है, और हमेशा रहेगा। मेरी जिंदगी में तू किसी दूसरे का नहीं हो सकता। तू शायद मुझे मारना चाहता है, तो ले मार। मेरा छुरा ले, और जिस तरह मैंने तेरी प्रणयिनी के हृदय में छुरा मारा है, उसी तरह मेरे जिगर के आर पार कर दे। ले, मैं कुछ न कहूंगी। किसी से फरियाद नहीं करूंगी, शिकायत नहीं करूंगी।"

यह कहकर उसने रक्त-रंजित छुरा मेरे सामने फेंक दिया। पक्के लोहे का छुरा एक झंकार सहित कठोर भूमि पर एलिनर के पास गिर पड़ा।

मैंने छुरा उठा लिया। आवेग से उठा लिया, और तान कर अपनी छाती में मारना चाहा। किन्तु उसी क्षण बिजली की तेजी से मेरे उठे हुए हाथ और वक्षस्थल के बीच हालिया आकर खड़ी हो गई, और छुरा तेजी से आकर हालिया की पीठ में, ठीक उसी जगह जहां पर एलिनर के लगा था, घुस गया। हालिया ने दोनों हाथों से मुझे जकड़ लिया, और मेरे गालों पर अपना मुख लगाये हुये हसरत भरीं निगाहों से मेरी ओर देखने लगी। उसके मुख से एक आह न निकली, एक शब्द न निकला। उसकी आंखों की ज्योति मंद पड़ गई, चमक अंतर्हित हो गई।

हालिया का मृत शरीर मेरे वक्षस्थल के सहारे खड़ा रह गया।

★

न-मालूम क्यों ?

(१)

कलकत्ते की वेश्याओं के संबंध में रमाकांत बहुत कुछ सुन चुके थे, और जब वह अनायास एक दिन कलकत्ते आ गये, तो उनके देखने तथा उनके संबंध में स्वयं अनुभव करने का लोभ संवरण न कर सके। कश्मीर-हिन्दू होटल में वह ठहरे थे, जहां से वेश्याओं का मुहल्ला बहुत समीप था। वह रोज शाम को अकेले निकलते, किंतु सोनागाछी के पास पहुंचते-पहुंचते उनकी अंतरात्मा काँपने लगती। वह कुछ दूर जाकर या कभी-कभी मोड़ पर से ही घूम पड़ते। उस नारकीय जीवन को अध्ययन करने का साहस उन्हें न होता था। उन्हें ऐसा मालूम होता कि उनके वहां जाने से कोई भयानक कांड उपस्थित होगा।

एक दिन वह उसी प्रकार असफल होकर लौट रहे थे कि थोड़ी दूर पर उनके नगर के एक मित्र मिल गये। रमाकांत उन्हें देखकर कुछ सकपकाए, और चाहा कि बचाकर निकल जायँ, लेकिन मदनमोहन ने उन्हें देख लिया और मुस्किराते हुये कहा—"अरे, तुम यहां! भाई, खूब मिले! वाह, इसमें झेंपने की कौन बात है। यह ठीक है कि तुम हमारे शहर के एक माननीय

नेता हो, समाज सुधारक हो, किंतु मुझे यह भली भांति मालूम है कि तुमभी एक मनुष्य हो। मानवोचित दुर्बलताएँ न होना मनुष्य को या तो पशु बनाता है, या देवता। चूंकि हम देवता बन नहीं सकते, इसलिए हमें मनुष्य ही रहना अधिक उचित मालूम होता है।"

यह कहते हुए वह जोर से हँस पड़े, और उन्हें सस्नेह अपने हृदय से लगा लिया।

रमाकांत ने मुस्किराने की चेष्टा करते हुये कहा—"यह ठीक है, परंतु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मुझमें इतना साहस नहीं कि मैं इन गलियों के अंदर प्रवेश करूँ। रोज यहां तक घूमने आता हूँ, परंतु इस नरकपुरी के द्वार से ही वापस लौट जाता हूं। मेरे मन में यह इच्छा कई बार जाग्रत हुई कि समाज से परित्यक्त इन निराश्रयों की दशा निरीक्षण करूं, परंतु भाई, साफ तो यह है कि मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।"

मदनमोहन ने सप्रेम उनका हाथ दबाते हुए कहा—"कोई चिंता की बात नहीं। पहले पहल सब कोई शरमाता है। एक मर्तबा जाने से भीरुता दूर हो जाती है। खैर, चलो, मैं आज तुम्हें ले चलूँ।"

यह कहते हुये उन्होंने रमाकात का हाथ पकड़ा, और सोनागाछी की गलियों में ले जाने लगे। रमाकांत की आत्मा बड़े वेग से सिहर कर कांपने लगी, किंतु मदनमोहन के हाथों की गर्मी उन्हें धैर्य बंधाने लगी।

(२)

मदनमोहन ने एक जीने पर चढ़ते हुये कहा—"अभी तक तो तुमने बहिरंग रूप देखा, अब चलकर अंतरंग दृश्य देखो।"

रमाकांत ने अपना हाथ छुड़ाते हुये कहा—"भाई, मुझे माफ करो, मैं बहुत देख चुका। अब मैं वापस जाऊँगा।"

मदनमोहन ने उन्हें घसीटते हुये कहा—"यह क्या! बिचकने कैसे लगे। ऐसा क्या कभी हो सकता है? यदि केवल साहित्यिक भाव से हीं उनका अध्ययन करना चाहते हो, तो तुम्हें उनका घरेलू जीवन भी देखना अत्यावश्यक है।"

रमाकांत की आत्मा कांपने लगी। किसी अज्ञात आशंका से वह सच-मुच थरथराने लगे।

उनकी कमजोरी को लक्ष्य करते हुये मदनमोहन ने कहा—"वाह, तुम पुरुष होकर एक स्त्री—वेश्या—के दरवाजे पर कांपते हो? डूब मरने की बात है।"

मदनमोहन ने उन्हें अधिक सोचने का मौका नहीं दिया, वह उन्हें ठेल कर जीने के ऊपर चढ़ाने लगे। रमाकांत ने कातर और कुछ विह्वल दृष्टि से उनकी ओर देखा, और उनकी प्रतिरोध शक्ति निरुपाय तथा हताश होकर पुरुषत्व के अभिमान की ओर देखने लगी। उनकी आत्मा ने धीमे, करुण स्वर में पूछा—"क्या यही पुरुषत्व है?"

मदनमोहन ने उन्हें तीसरे खंड के एक बन्द द्वार के पास खड़े करते हुये कहा—"हिम्मत न हारो, तुमसे ज्यादा तो यहाँ की स्त्रियों में साहस है।"

रमाकांत की आत्मा ने मौन भाषा में उत्तर दिया—"ठीक है, क्योंकि शैतान उनका सहायक है।" किन्तु प्रकट रूप में कुछ कहने के लिए जैसे उद्यत हुये, वैसे ही अवरुद्ध द्वार खुल गया, और भीतर के तेज प्रकाश ने

सामने खड़ी एक अनुपम सुन्दरी के सौंदर्य से द्विगुणित होकर उन्हें स्तब्ध कर दिया। उनका विरोधी भाव दुम दबाकर आत्मा की शरण में त्राहि त्राहि पुकारने लगा।

सुंदरी ने उन दोनों को नत-मस्तक हो अभिवादन किया।

मदनमोहन ने उन्हें भीतर ले जाते हुए कहा—"आज मैं अपने एक मित्र का परिचय कराना चाहता हूं। आशा है, आप उनकी अभ्यर्थना मुझसे कहीं अधिक करेंगी, और उन्हें किसी प्रकार असन्तुष्ट न करेंगी।"

यह कहते हुए उन्होंने संकेत भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। सुन्दरी को समझने में कुछ देर न लगी कि रमाकांत एक रंगरूट हैं।

सुंदरी का नाम प्रमीला था। उसने रमाकांत का हाथ पकड़ते हुए कहा—"आइए, आज मेरा परम सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए, और मेरी कुटीर पवित्र हो गई।"

रमाकांत के समस्त शरीर से एक तड़ित्प्रवाह निकल कर उन्हें व्याकुल करने लगा। उन्होंने अपना हाथ धीरे से छुड़ा लिया, या प्रमिला ने स्वयं छोड़ दिया, इसका निर्णय वह स्वयं न कर सके।

सबके बैठ जाने पर मदनमोहन ने कहा—"यह भी मेरे शहर—काशी के रहने वाले हैं, और लोहे के व्यापारी हैं। किसी जरूरी काम से यहां आए हैं। आज घुमाते-घुमाते मैं इन्हें यहां ले आया हूँ।"

रमाकांत ने आश्चर्य के साथ मदनमोहन की ओर देखा, क्योंकि न तो वह और न मदनमोहन खुद काशी के रहने वाले थे, और न वह लोहे के व्यापारी थे। वह तो एक साधारण स्थिति के ज़मींदार थे। बड़े दिन की छुट्टियों में, रियायती टिकट से लाभ उठाकर, कलकत्ता देखने आए थे।

हाँ, उन्हें साहित्य और देश से कुछ प्रेम अवश्य था, जिससे प्रेरित होकर वह दोनों दिशाओं में कुछ न कुछ उद्योग करते रहते थे। मदनमोहन ने उनका हाथ दबाते हुए चुप रहने का संकेत किया। वह मन मसोस कर रह गए! उसी समय उनके हृदय में किसी ने पुकार कर कहा—"शैतानपुरी में प्रवेश करने का पहला मंत्र है—अपनी असलियत छिपाना और झूठ बोलना!

(३)

मदनमोहन ने यह विलकुल सत्य कहा था कि हिचकिचाहट केवल प्रथम प्रयास में हुआ करती है। और, जब कभी रमाकांत सोचते, तो उनका हृदय सचमुच धक से रह जाता, और कोई कहता कि पतन तो आस्तीन का साँप है न-मालूम कब काट खाय।

रमाकांत की तबियत कुछ ऐसी लगी कि वह नित्यप्रति प्रमीला के यहाँ जाने लगे। मदनमोहन के साथ-साथ कुछ दिन आना जाना लगा रहा, और फिर जब वह अपने घर—कानपुर—लौट गए, तो भी रमाकांत उसके यहां जाते रहे। मदनमोहन एक खिलाड़ी आदमी थे, जीवन को वह एक खेल समझते थे, और एक चतुर खिलाड़ी की भांति ही अपने जीवन की घटनाओं से खेला करते थे। किसी वस्तु विशेष से वह अपना दिल लगा कर उलझा लेने वाले व्यक्तियों में न थे। उन्होंने जाते हुए कहा—"पंडित जी, अब आप खुलकर प्रमीला से खेलें, लेकिन इतना मैं कह देना चाहता हूं कि कहीं उसकी धारा में अपने को न बहा दें, क्योंकि पुरुषत्व का सबसे कमजोर कोना है भावुकता। कर्मिष्ठ संसार में भावुकता का कोई स्थान नहीं। वह केवल कवियों और साहित्यिकों की बपौती है, हम-जैसे

खिलाड़ियों का उसमें कोई भाग नहीं। आप एक अच्छे साहित्यिक हैं, मुझे भय है, कहीं भावुकता आप को डुबा न दे।"

रमाकान्त मुस्किराए, और थोड़ी देर बाद कहा—"मेरे पतन का मार्ग तो तुमने प्रशस्त किया है। खैर, मैं इस सम्बन्ध में कुछ न कहूंगा। कानपुर आकर इसका प्रतिशोध लूँगा। अब रहा भावुकता के बारे में, सो मैं जरूर भावुक हूं और यही भावुकता मुझे प्रमीला की ओर घसीटती है। मैं उससे प्रेम करता हूं, किसी कुभावना के वश न होकर, बल्कि मेरा प्रेम शुद्ध-सात्विक है, जैसा भाई का भगिनी के प्रति होता है। मैं नहीं जानता ऐसा क्यों होता है। परंतु जहाँ मैं उसे देखता हूं, वहाँ मेरे मन में कोई कहता है कि इस दुखिया के इस बहिरंग जीवन के आवरण में कोई सहृदय गुमसुम होकर बैठा है, जिसका उद्धार करना मेरा कर्तव्य है।"

मदनमोहन ने जोर से हँसते हुए कहा—"भाई, इसी का नाम भावुकता है। अगर इन फिजूल विचारों में उलझ जाओगे, तो याद रखना तुम्हारा उद्धार कोई नहीं कर सकता! तुम अपने को डुबा दोगे, और पथ के भिखारी होकर लौटोगे। मैं समझता हूं, तुम मेरे साथ कानपुर वापस चलो, तो अधिक अच्छा होगा।"

रमाकांत ने हँसते हुए कहा—"मैं इतना भोलानाथ नही हूं। सांसारिक व्यवहार मैं अच्छी तरह जानता हूं।"

मदनमोहन ने तीव्र कटाक्ष करते हुए कहा—"बेशक! अगर सांसारिक व्यवहार में पटु न होते, तो क्या अपने विवाह के पहले अपनी भावी पत्नी को एक मामूली हैसियत के मोटर-ड्राइवर के साथ भाग जाने देते!

मदनमोहन के व्यंग ने रमाकांत के मर्मस्थल में आघात किया। सत्य

की व्यंजना व्यंग की कटुता है। क्षण मात्र में उनके स्मृति-पटल पर वह घटना ताजी हो गई, जिसने उनके जीवन की शांति नष्ट कर दी थी। आज से दस साल पहले उनका विवाह, दिल्ली में, पं० राधेलाल की पुत्री से, तय हुआ था, और तिलक आदि विवाह के पूर्व की समस्त प्रथाएँ पूर्ण होकर विवाह का दिन भी निश्चित हो गया था। किंतु बरात जाने के पहले एक दिन उनके यहां यह समाचार आया कि उनकी भावी वधू अपने स्कूल के मोटर ड्राइवर के साथ भाग गई है। इससे वह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने आजन्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा की, और स्त्री जाति के घोर शत्रु हो गए। समय के साथ-साथ वह शत्रुता का भाव कम होने लगा, किंतु वह स्त्री जाति को कभी क्षमा न कर सके। अब उसी स्त्री जाति का अध्ययन करने के लिये आकुल होकर कलकत्ते आए थे।

रमाकांत का मुख निष्प्रभ होकर विवर्ण हो गया।

मदनमोहन को अपनी गलती मालूम पड़ी, उन्होंने विनय-पूर्ण स्वर में कहा—"भाई, मुझे क्षमा करो। मैं मुँहफट आदमी हूं, धोखे से निकल गया।"

रमाकांत ने अपने बिखरे भावों को एकत्र करते हुए कहा—"नहीं मित्र, तुम्हारा कथन सत्य है। पर विवाह संपन्न होने के बाद मेरी स्त्री भागती, तो मैं उसके लिये उत्तरदायी होता, किंतु यह घटना तो पहले ही घट गई, जिसका प्रतिकार मैं कभी नहीं कर सकता। हाँ, फिर भी मेरे शरमाने के लिए काफी है।"

यह कहकर उन्होंने दुःख के साथ अपना मुख फिरा लिया। वेदना

की टीस ने किसी क़दर उच्छृंखल मदनमोहन के हृदय पर भी आघात किया।

मदनमोहन ने कुंठित होकर कहा—"अच्छा मित्र, मैं अब जाऊँगा, क्योंकि गाड़ी जाने का समय हो गया। मैं जानता हूं, तुम अभी तक वह घटना भूल नहीं सके हो, और शायद न भूल सकोगे, इसीलिये तुम अवि-वाहित हो।"

रमाकांत ने कोई उत्तर नहीं दिया। मदनमोहन ने भी अधिक छेड़ना मुनासिब नहीं समझा, और चुपचाप कमरे के बाहर हो गए। रमाकांत कमरे से खिड़की के बाहर कोलाहल देखकर अपने हृदय के प्रश्न का उत्तर खोजने लगे। वह प्रश्न था—वह क्या कभी मिलेगी ? काश इस जीवन में एक बार तो मिलती—केवल एक क्षण के लिए, और कह देती कि मैं इसलिए उस मोटर-ड्राइवर के साथ भाग गयी थी।"

उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली, और कलरव उनका उपहास करने लगा।

(४)

उस दिन शाम को प्रमीला ने शंकित स्वर में पूछा—"क्यों रमेश बाबू, आज इतने उदास क्यों हो ?"

प्रमीला रमाकांत को रमेशचंद्र के नाम से जानती थी, क्योंकि मदन-मोहन ने यही नाम उसे बताया था।

रमाकांत ने मुस्किराने की चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं, मैं उदास तो नहीं हूं। मदनमोहन के न होने से आज कुछ उदासी छाई है।"

प्रमीला ने चकित होकर पूछा—"मदनमोहन बाबू कौन हैं ?"

रमाकांत को अब अपनी भूल जान पड़ी। मदनमोहन का नाम प्रमीला के समाज में व्रजेंद्रनाथ था। उन्होंने अपनी गलती सुधारते हुए कहा—"मेरे एक मित्र हैं जो अभी तक मेरे साथ रहते थे, आज ही वह भी व्रजेंद्र बाबू के साथ कानपुर···नहीं···काशी चले गए हैं।"

इसके बाद कमरे में फिर निस्तब्धता छा गई। उससे ऊबकर प्रमीला ने कहा—"कोई बात क्यों नहीं करते। मुझे गुम-सुम बैठना अच्छा नहीं लगता। अच्छा, कुछ पियो, तब स्फूर्ति आ जायगी, और यह भयभीत करने वाला सन्नाटा अपने आप भाग जायगा।"

यह कहकर बात की बात में वह सोडा और ह्विस्की का बोतल और दो गिलास ले आई। रमाकांत ने कहा—"मैं तो पीता नहीं, आप ही पीजिए।"

प्रमीला ने उनके समीप बैठकर खिसकते हुए कहा—"यह कैसे हो सकता है। आपको तो अवश्य पीना पड़ेगा। पीना कोई गुनाह नहीं।"

यह कहते हुए उसने सोडा मिलाया, और एक मोहन कटाक्ष से वह गिलास उठाकर उनके अधरों के समीप ले गई।

रमाकांत की अन्तरात्मा ने बहुत जोर मारा, मगर उत्तप्त यौवन के भयंकर वेग ने उनकी प्रतिरोध-शक्ति को क्षीण कर दिया। वह इनकार न कर सके, और दो-तीन घूँट पी गए। एक तप्त शलाका उनका हृदय जलाने लगी।

प्रमीला कुछ मुस्किराई, और फिर उसी प्याले से वह भी पीने लगी। उसने उसे खाली कर दिया। दूसरा प्याला भरते हुए उसने कहा—"यह अमृत है, सारी चिंताओं को नाश करने में रामबाण है। लीजिए, पीजिए।"

रमाकांत आपत्ति न कर सके, और इस बार वह पूरा प्याला पी गए। प्रमीला मुस्किराई, और फिर अँगड़ाई। उसकी आँखों से विजय झांकने लगी। उसने दूसरा प्याला भर कर खुद पिया। रमाकांत के शरीर में जोश का हलका ज्वार सिर की ओर चढ़ने लगा, जिसमें गुदगुदी थी, मिठास थी, और हिजाब तथा आशंका नष्ट करने की कोशिश थी।

प्रमीला ने आगे बढ़कर कहा—"रमेश बाबू, मैं तुम्हें प्यार करती हूं।"

'प्यार'—शब्द ने रमाकांत के चाबुक मारा। वह होश में आये, और एक भयानक दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर जोर से हँस पड़े। उनके हास्य का व्यंग प्रमिला को चिढ़ाने लगा।

प्रमीला ने शंकित दृष्टि से देखते हुए कहा—"तुम्हें विश्वास नहीं होता ?"

रमाकांत ने भर्राए हुए स्वर में कहा—"क्यों नहीं होता। स्त्री जाति का विश्वास न करूँगा, तो फिर किसका करूँगा। और, जब वह स्त्री वेश्या है, तो मैं आँख बंद कर विश्वास करूँगा।"

प्रमीला के नेत्र लाल हो गए। उसका नारीत्व जागृत हो गया। उसने आँखें फाड़कर उनकी ओर देखते हुए कहा—"वेश्या की भी मर्यादा है। लेकिन नारी जाति को वेश्या-जैसा घृणित बनाने वाले तो तुम्हारे ही जैसे पुरुष हैं। मैं जन्म से वेश्या नहीं हूं। केवल पेट की ज्वाला शांत करने के लिए नहीं, बल्कि तुम्हारे जैसों के तिरस्कार से बचने के लिए, और तुम्हें भी अपना-जैसा घृणित, रुग्ण, पापी, शैतान बनाने के लिये, अथवा अपना प्रतिशोध लेने के लिये वेश्या हुई हूं। तुम समझते हो, मैं घृण्य हूं, कोढ़ से भी अधिक घृण्य हूं, किंतु मैं समझती हूं, तुम लोग

कोढ़ के कोढ़ हो, और हमारे कोढ़ के मैल को भोजन के समान खाकर जीवित रहते हो।" कहते-कहते उसके नथुने फूलने लगे, और विषमय दृष्टि से वह उनकी ओर देखने लगी।

रमाकांत स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। उन्होंने धीमे स्वर में कहा—"अच्छा, अगर तुम जन्म से वेश्या नहीं हो, तो तुम कौन हो ?"

प्रमीला ने आवेश के साथ कहा—"मैं कौन हूं। मैं एक भद्र कुल की ब्राह्मण-संतान हूँ। मेरे पिता एक प्रतिष्ठित वकील थे, जिन्होंने अपने बाहुबल से बहुत रुपया कमाया था। वह पाश्चात्य विचारों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे, और उसका अनुकरण अंधे होकर कर रहे थे। उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए स्कूल भेजना शुरू किया, जहाँ के स्वतंत्र वायुमण्डल ने मेरे दिमाग में बुरी आजादी के विषमय कीटाणु भर दिए। नतीजा यह हुआ कि मैं खूब आज़ादी से अपना जीवन आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगी। मेरी शिक्षिकाएँ, जिनमे अधिकांश अविवाहित थीं, मेरा सौंदर्य देखकर ललचाने लगीं, और उन्होंने मुझे ऐसी शिक्षा देनी आरंभ की, जिससे मुझे विवाह से और उसके जीवन से घृणा हो गई। उन्होंने मुझे धीरे-धीरे अपने अंतरंग केलि-गृह में प्रवेश किया, और मेरे द्वारा हजारों रुपया पैदा किया, जिसका कुछ अंश मुझे भी देती थीं। मैं तितली की तरह फुदक-फुदक कर नए-नए फूलों का रस लेने लगी। अंत में जब मेरे पिता को कुछ-कुछ आभास मिला, तो उन्होंने मेरा विवाह करना चाहा। मां के मर जाने से मैं बिलकुल आजाद हो चुकी थी, और भाई-भौजाई की बिलकुल परवा न करती थी। मैं ने एक दिन साफ साफ कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूँगी। इसे सुनकर मेरे पिता स्तंभित रह गये, और उन्होंने

बड़े वेग से विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इन्हीं दिनों मेरा प्रेम एक सुन्दर जवान से हो गया था। जब कोई उपाय न देखा तो घर से दस-पन्द्रह हजार की पूँजी लेकर उसी के साथ निकल पड़ी। पहले वह मेरा गुलाम होकर रहने की कसम खा चुका था, लेकिन उसका और मेरा मन ऊबते देर न लगी। हम दोनों अलग हो गये और तब से यह जीवन व्यतीत कर रही हूँ।"

रमाकांत ने भर्राए हुए कंठ से कहा—"तुम्हारे पिता का क्या नाम था ?"

प्रमीला ने दूसरा गिलास खाली करते हुए कहा—"पंडित राधेलाल। हम लोग दिल्ली के रहने वाले थे, और मैं अपने स्कूल के मोटर-ड्राइवर के साथ भाग आयी थी।"

रमाकांत विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगे। उनकी आँखों से कौतूहल और वर्षों की वेदना सशरीर निकलकर प्रमीला को निगल जाने के लिये छटपटा रही थी।

प्रमीला तीसरा गिलास खाली करते हुए हँसी, और फिर उसने कहा—"मेरे पति का भी नाम सुनोगे ? अच्छा कहती हूं, सुनो, उनका नाम था पंडित रमाकांत, और वह कानपुर के रहने वाले एक शिक्षित युवक थे। उसी वर्ष उन्होंने एम० ए० पास किया था। अखबारों में मैंने उनका नाम देखा था—नहीं, खोजा था, क्योंकि उस घटना के बाद ही मैं उन्हें प्यार करने लगी—न-मालूम क्यों ?"

यह कहकर वह बड़े वेग से हँसी। रमाकांत के मुख से भी निकल पड़ा—"न मालूम क्यों ?"

वह भी दूसरे क्षण प्रमीला के स्वर से भी भयंकर स्वर में हँस पड़े। अदृष्ट के हास्य की व्यंगमयी कर्कशता ने भी अपनी भीषण प्रतिध्वनि में कहा—"न मालूम क्यों ?"

———

विधाता का विधान

(१)

ओंकार का मन काँप रहा था। वह चिंताओं का भार लेकर जहाज़ की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे। 'डायमंड क्वीन' अपने चलने की तैयारी कर रहा था। उन्मुक्त वायु के झोंके उसके उन्नत ललाट को चूम कर बिदा दे रहे थे। ओंकार के हृदय में एक हूक उठी, जो मनुष्य के हृदय में उस वक्त उठती है, जब जननी, जन्मभूमि के अंचल की छाया छोड़कर वह परदेश का सहारा लेता है। पिता की संपत्ति ईश्वर का मनोरम आशीर्वाद है, और उसका न होना भयंकर कोप। ओंकार इस आशीर्वाद से परिपूर्ण थे। पिता से ओंकार को २० लाख की चल संपत्ति मिली थी, और अचल सपत्ति में कई गाँव और शहर में मकान। सरस्वती के प्रसाद से भी वह भरपूर थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्मानित होकर पैरिस में डॉक्टर की उपाधि लेने जा रहे थे। उत्साह अपने भरे यौवन में मत्त था, लेकिन ओंकार का हृदय फिर भी चिंतित था।

विवाह—प्रणय-प्रेम—यह हिंदू-जीवन की प्रेम-परिपाटी है। ओंकार की विधवा माता ने अपने को माता के अंतिम गौरव के सुख से वंचित नहीं रक्खा। जब ओंकार बी० ए० में ही थे, उनकी माता ने एक सोने की

पुतली, जो रूप और गंभीर प्रेम की सुनहली जंजीर लिए थी, लाकर उनके उत्तरीय से बाँध दी। वेग से भागते हुए जहाज में लंगर पड़ गया। उनकी गति मंद होकर क्षण-भर के लिये रुक गई, और वह आश्चर्य से उस रूप-रेखा को देखने लगे। यौवन की पहली उमंग अपनी निधि पाकर उसमें लीन हो गई। माता को आश्वासन मिला। वह अपनी दवा की सफलता पर स्वयं आत्मतुष्टि की हँसी से खिल पड़ीं। वात्सल्य की धारा दो बराबर हिस्सोंमें बँट गई। ईश्वर का एक साधारण कृत्य और मनुष्य के के लिये एक रहस्यमयी प्रहेलिका।

किंतु पत्नी उमासुंदरी ने अपना कर्तव्य समझा, और पति को, अपने पढ़ने के बहाने से, कर्तव्य का मार्ग दिखलाया। विष्णुशर्मा ने कहानी बनाकर नीति-शास्त्र राजकुमारों को कंठस्थ कराया था, और उमासुंदरी स्वयं एक पाठ होकर ओंकार को पढ़ाने लगी। ओंकार और उमासुंदरी नियमित रूप से पढ़ने लगे। किंतु पढ़ते-पढ़ते दोनों न-जाने कब एक दूसरे को देखने लगते, और सहसा झेंपकर फिर हँसकर अपने पाठ में मन लगाते। परंतु यह तपस्या का बगुला-प्रयत्न क्षण-भर में नष्ट हो जाता, और दोनों पुस्तकें छोड़ देते। ओंकार उसके निकट, अति निकट, बैठ जाते, और उमासुंदरी हँसती हुई माला होकर उनके उर पर झूल जाती। प्रणय हँसकर अपनी आँखें बंद कर लेता। ओंकार को वही मीठी याद इस समय भी चिंतित कर रही थी।

यह था, परंतु सरस्वती ने अपने वर पुत्र को त्याग नहीं दिया। उनकी विधवा माता की तरह वह इस प्रणय-लीला को देखकर, मन ही मन संतुष्ट होकर चिर-सुखी होने का आशीर्वाद दे रही थीं। ओंकार को फिर भी

गौरव मिला, और प्रयाग-युनिवर्सिटी में 'रेकार्ड बीट' किया। विश्वविद्यालय ने फ्रांस जाकर डॉक्टरेट लेने का, छात्र-वृत्ति देकर, अनुरोध किया। एक भारतवासी को फ्रेंच-साहित्य का इतना उत्कृष्ट ज्ञान हो, एक चकित कर देने वाली बात थी, और वह एक देशीय विश्वविद्यालय के फ्रेंच-भाषा के सबसे श्रेष्ठ विद्वान थे।

उमासुंदरी पति के गौरव से खिल पड़ी। उसने भी मैट्रिक परीक्षा द्वितीय श्रेणी में, पास की। वह कितना उनके जीवन में गौरवमय था। मा, विधवा मा, के लिये तो एक आह! निष्ठुर विधाता के विधान से दिवं-गत स्वामी की स्मृति में रुलानेवाला दिन था। वह कह उठीं—उनके स्वर में फरयाद थी—"आह! अगर तुम भी होते, तो......? यह विधवा होने की भयंकर पीड़ा थी, किंतु उस पीड़ा में जलन नहीं थी, गुदगुदी थी, कंपन था, और रोमांचित करनेवाला मीठापन था। मुख कमल की तरह कुम्हलाया हुआ था।

उस दिन की भी सुखप्रद छाया इस समय ओंकार के नेत्रों के सामने, चलित चित्र-कला की भांति, अपना खेल दिखा रही थी। एक हल्का-सा धक्का लगा, और विचारावलि टूट गई। जिस तरह शीशे की तश्तरी झन-झनाकर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाती है, उसी तरह इनकी भी विचारा-वलि बिखर गई। उनके मुँह से सदा का अभ्यस्त शब्द निकल गया—"Excuse me." दूसरे ही क्षण, वीणा-विनिंदित स्वर में, कोमल कंठ से, कहा—"I am sorry."

ओंकार ने सिर घुमाकर देखा, प्रातःकाल की कुमुदिनी उषाकाल में

मधुर हँसी हँस रही थी, जिसके अधर उदित सूर्य की लाल मयूखों से अति-रंजित होकर एक लुभावना रूप बिखेर रहे थे। ओंकार ने विस्मित होकर देखा— ग्रे-फ्राक पहने, खेलती हुई एक फ्रेंच-सुंदरी खड़ी थी। वह मुड़-कर एक वंकिम कटाक्ष करके जाने ही वाली थी। आँखें चार हुईं, ओंकार काँप उठे, यौवना हँस पड़ी। वह मुड़कर सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, और वह नीचे उतरने लगी। एक क्षण भर का दृश्य था, किंतु एक भेद के संसार का सूत्रपात था।

ओंकार अपने कैबिन में चले गए। फर्स्ट क्लास कैबिन एक विशेष स्थान पर था। उन्होंने ज्यों ही अपना कैबिन खोलकर बिजली का स्वीच दबाया, उनकी दृष्टि एक तार पर पड़ी, और उसमें नत्थी दस्तखत करने की स्लिप और पेंसिल। तार उन्हीं के नाम का था। उन्होंने स्लिप पर दस्तखत करके तार खोलकर पढ़ा—"Wait, mother agreed to drink Gangajal during our sojourn. Coming With arrangements. Reaching Bombay Wednesday." Umasundari (ठहरिए, अम्मा ने हमारे प्रवास में गंगाजल व्यवहार करना स्वीकार कर लिया है, इसलिये हम सब इन्तजाम करके आ रहे हैं। हम बुधवार को बंबई पहुंचेगे। उमासुंदरी)

भाग्य मुस्किराने लगा। उन्होंने दूसरे ही क्षण जहाज़ के दफ्तर में जाकर अपना पैसेज कैंसिल करने और वायु-वेग से अपना सामान उतरवाने का आदेश किया। आह! कैसी विश्रांति थी, और कैसा आनंद!

जब विलायत जाने का प्रश्न उठा, तो उमासुंदरी ने कहा—"जाओ, तुम अवश्य जाओ, मैं तुम्हारे उन्नति के मार्ग में कंटक नहीं होऊँगी।

तुम्हारे गौरव में मेरा गौरव है ।" लेकिन विधवा मा ने विनय और वात्सल्य से ओत-प्रोत करुण स्वर में कहा — "नहीं ।"

पति-पत्नी तो जाने के लिये उत्सुक थे, किंतु उनकी माता मानदादेवी एक हिंदू घर की तपस्या-मूर्ति विधवा थीं, भारतीय प्राचीन संस्कारों की जीवित मूर्ति थीं, जिसमें विषय, अनुराग, शृंगार, आभरण एक जीवन के लिये कठोर व्रत की विशुद्ध अग्नि में जलकर राख हो गए थे । सफेद मलमल की सारी किसी रंग के नाम से परिचित नहीं थी । विदेश में, म्लेच्छों के मध्य में, वह क्या हिंदू धर्म जीवित रख सकेंगी । उन्होंने अपनी सम्मति नहीं दी । अकेले ओंकार का जाना निश्चित रहा, क्योंकि उमासुंदरी को उनकी मा छोड़ना नहीं चाहती थी, यद्यपि कौशल्या ने छोड़ दिया था । कौशल्या के प्रेम में विचार था, और मानदा के प्रेम में माता का स्वार्थ और अंधापन, जो केवल ओंकार के प्रकाश से प्रज्वलित था । ओंकार चिंताओं का बखेड़ा लेकर चल दिए ।

कौशल्या राजरानी थीं, उस समय सधवा थीं, रामचंद्र के साथ वन नहीं जा सकीं, परंतु मानदा ने वह भी क्षुद्र बंधन तोड़ दिया, और अंत में अपनी आँखों का प्रकाश छिप जाने पर घोर अंधकार देख उमासुंदरी के प्रस्ताव पर अपना आखिरी फैसला दे दिया कि मैं गंगाजल का प्रबंध हो जाने पर पैरिस में रह सकूँगी । टॉमस कुक ऐंड कंपनी से प्रत्येक डाक से गंगाजल भेजने का प्रबंध अति सहज में हो गया । धन का सदुपयोग था—खर्च था, किंतु कितना लाभ था । आत्मतुष्टि का सफल प्रयत्न था ।

ओंकार अपनी धुन में मस्त वेग से उतर रहे थे । सीढ़ी के अंतिम डंडे पर वह फिर उसी सुंदरी से टकरा गए । अदृष्ट मुस्किरा पड़ा । दोनों

फिर चकित होकर एक दूसरे को देखने लगे। पहले तो जाता हुआ मिलन था, और इस बार आता हुआ।

सुंदरी ने मुस्किराते हुए कहा—"क्या कारण है, हम लोग टकराते बहुत हैं।" फिर उनका असबाब कुलियों के सिर पर देखकर कहा—"क्या आप जा रहे हैं? यह तो परिचित जैसा प्रश्न था। क्षणिक मुठभेड़ में ही क्या परिचय हो गया! ओंकार ने प्रहृष्ट कंठ से उत्तर दिया—"हाँ, मैं दूसरी 'बोट' से 'सेल' करूँगा। मेरी माता भी आ रही हैं, उनके लिए ठहरना पड़ेगा।' उत्तर भी सहज परिचित कंठ से मिला। यौवना ने फिर पूछा—"आप कहाँ जा रहे थे?"

ओंकार ने उत्तर दिया—"फ्रांस। पैरिस में मेरे गुरुदेव हैं, उनके पास अध्ययन करने जा रहा हूँ। उनका नाम है मोशिए लुई रोमाँ।"

युवती ने अस्फुट स्वर से कहा—"जो लूव्रे के पास रूडी-टेंपिल में, नं॰ A 57 में, रहते हैं।"

ओंकार ने विस्फारित नेत्रों से कहा—"हाँ, श्रीमती, वही। आप कैसे जानती हैं?"

युवती ने उनकी ओर क्षण-भर देखा, और फिर सिर झुकाकर कहा—"वह मेरी मा के भाई हैं। मैं यहाँ भारत में अपने ममेरे भाई के पास मिलने आई थी, जो इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में इकॉनॉमिक्स के प्रोफेसर हैं।'

ओंकार ने कहा—"आश्चर्य है, सुंदरी! आप इतनी घनिष्ठ निकली! विधि की लीला। मैं उन्हें भली भाँति जानता हूं, वह मुझे यहाँ पढ़ा चुके हैं, और उनके विशेष निमंत्रण पर मैं पैरिस जा रहा हूं। वहाँ मैं युनिव॰सटी में डॉक्ट्रेट के लिये कोशिश करूँगा।"

युवती ने भोलेपन से कहा—"तब तो आप से मिलने का अक्सर

अवसर मिलेगा, क्योंकि मैं भी इसी साल बी० ए० की परीक्षा दूँगी। मेरे मामा भी मुझे विशेष रूप से चाहते हैं।"

यह कहकर युवती ने अपने नाम का कार्ड अपने झूलते हुए बैग से निकाल कर दिया। ओंकार ने भी अपना कार्ड दिया। दोनों ने एक दूसरे को धन्यवाद दिया।

इसी समय जहाज चलने की सूचना देने लगा। दोनों ने एक दूसरे को देखा, और कुली ने अपने क्षणिक मालिक ओंकार की ओर देखा। ओंकार ने पढ़ा, कार्ड पर लिखा था—'जूली मैडिलीन'।

जूली ने मुस्किराते हुए अपना कोमल हाथ आगे बढ़ा दिया। ओंकार ने झिझकते हुए हाथ मिलाकर कहा—"मुझे कितना हर्ष हुआ, मैं कह नहीं सकता।"

जूली ने उत्तर दिया—"अब पैरिस में मामा के घर साक्षात् होगा।" ओंकार ने वचन देते हुए कहा—"हाँ, अवश्य।"

जहाज का दूसरा संकेत पहले से भी तीव्र ध्वनि से आकाश को कंपित करने लगा। जूली क्षिप्र पदों से सीढ़ियों पर चढ़ने लगी, और ओंकार डाक के बाहर निकलने को अग्रसर हुए। विधि का विधान एक नया जाल गूँथने लगा।

(२)

मालाबार हिल्स पर समुद्रतरंग नाम का एक बंगला बिल्कुल हिंद-महासागर पर झाँक रहा है। प्रभात की किरणें जब नील वक्ष को ज्वलित सुनहला परिधान पहनाकर समुद्रतरंग को आलोकित करती हैं, उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो राज्याभिषेक के लिये कोई राजमाता अपने युवक

पुत्र को मांगलिक पीत परिधान से आभूषित कर राजतिलक के पहले, स्वयं अपने वात्सल्य के कुंकुम से, उसके उन्नत, प्रशस्त, गौर ललाट पर टीका कर रही हो। समुद्रतरंग में ओंकार के एक मित्र रहते थे। वह पारसी सज्जन थे, और बंबई के लक्षाधीश सोहराब जी के पुत्र थे, तथा ओंकार के सहपाठी।

दूसरे दिन प्रातःकाल ओंकार उठकर समुद्र का गंभीर गर्जन सुनने के लिये चले गए। अनंत जल-राशि थी। उत्तुङ्ग लहरें जोश में उठतीं, परंतु थककर, असफल होकर गिर पड़तीं, उसी तरह, जैसे कोई प्रणयी अपने प्रिय को अपने से दूर जानकर बेसुधी की हालत में उधर अग्रसर तो हो जाता है, परंतु वायु के थपेड़े उसकी बेहोशी दूर कर देते हैं, और वह जगकर गिर जाता है। ओंकार कुछ सोचने लगे।

ओंकार ध्यान-मग्न थे। रुस्तम जी ने ओंकार के समीप आकर कहा—"तुमने अभी तक चाय नहीं पी?"

ओंकार ने चौंककर कहा—"नहीं, मैं चाय नहीं पीता।"

रुस्तम जी ने कहा—"अच्छा, गरम दूध और येस्ट। यह बुरा नहीं है।"

ओंकार ने उत्तर दिया—"लेकिन मैं अभी कुछ नहीं पीना चाहता। अच्छा यह तो बतलाओ, यहाँ क्या कोई दूसरी कोठी बिकाऊ है?"

रुस्तम जी ने हँसते हुए कहा—"क्या यहाँ रहने का इरादा है!"

ओंकार ने उत्तर दिया—"हाँ, जीवन के कुछ दिन यहाँ व्यतीत करना चाहता हूं। भगवान् और प्रकृति से साक्षात् करने के लिये संसार के पूजा-गृहों में सबसे सुन्दर मंदिर यह है।"

रुस्तम जी ने प्रेम से ओंकार की पीठ पर हाथ मार कर कहा—"ओह!

तुम तो मुझे आश्चर्य में डाल रहे हो, तुम्हारे दिमाग में पूजा की तरफ यह रुझान कैसे पैदा हुई ?"

ओंकार ने गंभीर होकर कहा—"मैं तो आस्तिक सदा से रहा हूं।"

रुस्तम जी ने कुछ झेपे हुए स्वर में कहा—"यह मैं नहीं कहता, मैं सिर्फ यह कहता हूं कि तुम में यह वैराग्य क्यों, जब कि तुम पैरिस जा रहे हो।"

ओंकार ने हँसते हुए कहा—"यह ठीक है, लेकिन यह भी तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरा रक्षक मेरे साथ है।"

दोनों हँस पड़े। उनकी हँसी सुदूर समुद्र के नील वक्ष में प्रध्वनित होकर समा गई।

ओंकार को वहां तीन दिन तक ठहरना पड़ा। इसी दर्म्यान वह उस जगह से इतने परिचित हो गए कि उन्हें यह प्रस्ताव सबसे पहले उमासुंदरी के सामने रखना पड़ा, जब बुधवार को दोपहर के वक्त वह अपनी सास और घर के कामदार के साथ बंबई पहुंच गई। उनकी माता मानदादेवी और उमासुंदरी ने सहर्ष अपनी सम्मति दे दी।

ओंकार ने उसी दिन शाम को हँसते हुए कहा—"किंतु अम्मा, तुम्हें गंगा का नित्य दर्शन नहीं होगा।"

मानदा ने उत्तर दिया—"मैं प्रयाग बाबा को छोड़कर कहीं नहीं रह सकती। क्यों ? मैं न भी रहूँगी, तो क्या, तुम और बहू तो रहोगे।"

उमासुंदरी ने घूँघट खींचते हुए कहा—"मैं यहाँ रहूंगी, तो रोज तुम्हारे पैर कौन दाबेगा, और चूँकि मैं उस गौरव और सुख को छोड़ नहीं सकती, इसलिये मैं भी यहाँ न रहूंगी।"

ओंकार ने हँसकर कहा—"अब ठीक है। मैं ही केवल यहाँ योग-साधन कर तपस्या करूँगा।"

माता, बहू और पुत्र, तीनों हँस पड़े। उस हँसी में हृदय का कितना हलकापन था। बंबई में तीन-चार दिन बीतते देर नहीं लगती। बात करते करते निकल गए। ओंकार ने अपनी माता को सब नगर दिखलाया। वह देख तो रही थीं, लेकिन उन वस्तुओं में उन्हें आकर्षित करने की शक्ति नहीं थी।

शुक्रवार की संध्या को सिनेमा जाने का प्रोग्राम था। उमासुंदरी ने कपड़े पहन कर अपनी सास के पास आकर कहा—"अम्मा, क्या चलने का इरादा नहीं है।"

मानदा देवी ने अपनी माला बंद करते हुए कहा—"तुम दोनों जाकर देख आओ, अब इस बूढ़े शरीर को दुख मत दो।"

उमासुंदरी ने हँसकर कहा—"अच्छा, लौटकर मैं आज दो घन्टे तक तुम्हारा शरीर दाब दूँगी, और अगर कहोगी, तो रात भर तुम्हारा सिर और तलवे सहलाऊँगी।"

मानदादेवी ने उठते हुए कहा—"तुम लोगों से कब छूटने को है; चलो, अगर कहीं लल्लन आ गया, तो फिर मुश्किल हो जायगा।"

ओंकार को उनकी मा लल्लन ही कहती थीं।

इसी समय ओंकार ने आकर कहा—"अम्मा, जल्दी चलो, देर हो रही है। खेल शुरू हो गया, तो मज़ा मिट्टी हो जायगा।"

मानदादेवी ने अपनी चादर ओढ़ते हुए कहा—"चलो।"

दूसरे दिन, सवेरे दस बजे, 'ट्रैफलगर' जहाज़ से, ओंकार अपनी माता

और स्त्री के साथ नेपिल्स के लिये रवाना हो गए। नेपिल्स से रेल द्वारा पैरिस पहूंचने का कार्य-क्रम निश्चित हुआ।

मोशिए लुई रोमां को पहले से ही सूचना दे दी गई थी। उन्होंने शहर के बाहर एक पूरा मकान किराये पर ले रक्खा था।

संसार का वैचित्र्य देखते हुए तीनों यथासमय नेपिल्स पहुंच गए। रास्ते में पहले सबको कुछ कष्ट हुआ, 'सी-सिकनेस' ने सबको परेशान किया, परंतु कोई घबराया नहीं। मानदा देवी की दशा ठीक वैसी थी, जैसी दो शराबियों के बीच एक न पीने वाली की होती है। लेकिन फिर भी साहस से अपने को धैर्य बँधाती। और, रात्रि के समय उमासुंदरी की उत्साह-भरी सेवा उनके हृदय से इस विचार को दूर कर देती कि "मैं क्यों आई।"

और, ओंकार का हृदय, जो पहले चिंता से ओत-प्रोत था, भार-हीन होकर अपने जीवन के नए विधान बाँध रहा था।

(३)

नारी-सुलभ लज्जा उमासुंदरी का मधुर गुण था। किंतु पैरिस की रंगभूमि में, अनिद्य सुंदरी-मंडल में, उसकी अवहेलना देखकर, स्वयं लज्जित होकर कौतूहलमय नेत्रों से उसकी ओर निहारने लगी। कितना स्वतंत्र जीवन है। जहां स्त्रियाँ तितलियों की तरह अपने रूप का पराग बिखेरती फिरती हैं, और मतवाले भ्रमर उनकी केशर के मधु-पान में विभोर हैं। अप्सरा—मंडल का इतना खुला नृत्य पृथ्वी के किसी खंड में मिलेगा या नहीं, यह कहना कठिन है। साहित्य और कला जहाँ गौरीशंकर की चोटी पर पहुंच गए हैं, जिनकी विकसित अरुण मयूखें समग्र संसार को

चकित कर रही हैं। रियलस्टिक (यथार्थवाद) कला का सर्वोत्कृष्ट-दिग्दर्शन पैरिस जैसे नगर में ही मिलता है।

उमासुंदरी उस साज-सामान को देखकर विस्मित, चकित और मुग्ध हो गई। जैसे कोई पंडित, पुरानी लकीर का फकीर, किसी मदोन्मत्त समाज मे जाकर लम्बशाटपटावृत: हो जाता है, ठीक उसी तरह उमासुंदरी थी। यौवन की लालसा जाग उठी। पुरानेपन में एक नशे का सुरूर चढ़ने लगा। ओंकार ने उस परिवर्तन को निरख लिया। वह उसे उत्साह देने लगे। विकास आरंभ हो गया। यहाँ तक कि एक दिन अनायास दोनों जाकर एक कपड़े की दूकान से अपने-अपने लिए एक नवीन, अप-टू-डेट सूट ले आए। श्रीगणेश हँसने लगे।

एक दिन उमासुंदरी अपने कमरे में, शृंगारदान के सामने, बैठी सिर गुँथा रही थी, और मैडमें अगैथा उसकी अलकावलि एक नवीन प्रकार से सजा रही थी। ओंकार ने मिस जूली के साथ प्रवेश किया। उमासुंदरी चौंककर उठ खड़ी हुई, और ओंकार को देखकर साड़ी सिर पर ओढ़ ली।

ओंकार ने जूली की ओर संकेत करके कहा—"यह हमारे प्रोफेसर डॉक्टर लुई रोमाँ की भानजी हैं, और नाम है मिस जूली मैडिलीन।" फिर उमासुंदरी की ओर संकेत करके कहा—"यह मेरी स्त्री।"

दोनों ने हाथ मिलाया। जूली उमासुंदरी की बगल में खड़ी होकर बातें करने लगी।

उस दिन से घनिष्ठता बढ़ती गई। क़रीब-क़रीब रोज़ ही जूली उस परिवार में आने लगी, और उनमें सौहार्द अधिकाधिक गंभीर होता गया। यह ऐसा सूत्र उमासुंदरी के हाथ में आ गया, जिससे उसकी सुकुमार प्रवृ-

त्तियाँ क्रमशः विकसित होने लगीं। पश्चिमीय विचारों का रंग चढ़ने लगा। उसका नारीत्व अपना स्वतंत्र रूप लखकर उसी ओर बढ़ने लगा। किंतु एक बड़ा भारी किंतु उसके प्रत्येक क़दम पर आ जाता था। गुलामी की जंजीर, जो जन्म से पहन रक्खी थी, यद्यपि टूट गई थी, परंतु हाथ-पैर अब भी उसके बंधन से बँधे-से मालूम होते थे, और उनमें अब भी बोझापन प्रतीत होता था।

उमासुंदरी अपनी धुन में इतनी व्यस्त थी कि उसे मानदादेवी के साथ उठने-बैठने का बहुत कम समय मिलता था। स्वतंत्र वायुमंडल का आकर्षण इतना वेगमय था, जिससे उसकी प्राचीन कार्य-प्रणाली में बहुत फेरफार हो गया था। और, उसकी विधवा सास पुत्र और वधू का एकांत परिणय—नवजीवन का उत्साहमय विकास—मुग्ध नेत्रों से देख रही थी। उन्हें उसी में सुख और हर्ष था। यद्यपि वह फ्रेंच-भाषा या अंग्रेजी-भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उनके समारोह में भाग नहीं ले सकती थीं, और न लेना ही चाहती थीं, फिर भी उत्साहित करने में कोई उपाय उठा न रखती थीं।

मानदादेवी उमासुंदरी की अपने प्रति अवहेलना निरख रही थीं, परतु उससे उन्हें कष्ट न होता था, ईर्ष्या न होती थी।

संध्या की श्यामल छाया धीरे-धीरे संसार को आवृत कर रही थी। जूली और उमासुंदरी ने दौड़कर कमरे में प्रवेश किया। और, उमासुंदरी तो तुरंत ही अपनी सास के शरीर से, भोली-भाली बालिका की भाँति, लिपट गई।

मानदादेवी ने अपनी माला समेटते हुए कहा—"क्या है पगली ?"

उमासुंदरी ने उनके शरीर से और लिपटते हुए कहा—"यों मैं न

कहूंगी, वचन दो कि मेरी बात मानोगी तो कहूं।"

मानदादेवी ने ऊपरी रोष से कहा—"तूने यहाँ आकर मुझे तंग करना बहुत सीख लिया है। माला फेरती हूं, तो माला भी फेरने नहीं देती। विलायती कपड़े पहने छू लिया, अब सरदी में स्नान करना पड़ेगा। फिर पूछती हूं कि कुछ कहो, तो कुछ बोलती नहीं।"

उमासुंदरी ने हँसते हुए कहा—"नंगे पैर तो हूं। कपड़े तो ऊनी हैं; हाँ, विलायती फैशन में जरूर सिले हुए हैं। फैशन में क्या छूत लगती है। तुम्हारे पुत्र साहब तो यहाँ क्या और इलाहाबाद में क्या, सदैव विलायती फैशन के कपड़े पहनते हैं, उनके छूने से छूत नही लगती, और मेरे छूने से छूत लग गई। मैं दूसरी की कोख से पैदा हुई, तो यह भेदभाव।"

कहते-कहते उमासुंदरी ने मानदादेवी को छोड़ दिया। मानदादेवी ने हँसकर उसे अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"अरे पगली, तू तो लल्लन से भी ज्यादा प्यारी है। अच्छा बोल, क्या कहती है। मैं तेरा सब कहना मानूँगी। बोल मेरी लाड़ली, बोल।" उमासुंदरी ने मान-पूर्ण स्वर में कहा—"मेरा कहना क्यों मानोगी; हाँ, अभी वह आकर कहते कि अम्मा, फलाँ जगह चलना है, तो झटपट तैयार हो जातीं, लेकिन मैं चाहे नाक रगड़ते मर जाऊँ, तो भी...... ।"

मानदादेवी ने बीच में टोककर कहा—"खबरदार, जो संध्या समय यह बुरा शब्द निकाला; तू और लल्लन जबतक गंगा में जलधार बहे, अचल सुख भोगो, और मैं तुम्हारी सारी आपदाएँ लेकर मर जाऊँ, तो अच्छा है।"

उमासुंदरी ने अपनी सास को कर-आबद्ध कर कहा—"और तुम

संध्या समय ऐसी बात क्यों कहती हो। जानतीहो, तुम्हारे जानेके पहलेमैं ..''

मानदादेवी ने उमासुंदरी के मुँह पर हाथ रख दिया। जूली खड़ी खड़ी, चकित होकर, यह अर्थ-शून्य दृश्य देख रही थी। वह बेचारी सास बहू का अभिनय देख रही थी। उनकी बातें उसे समझ में न आती थीं। इसी समय ओंकार ने कमरे के अंदर आकर कहा—"अम्मा, अभी तक तुम तैयार नहीं हुईं।"

उमासुंदरी का बंधन ढीला पड़ गया, और वह एक ओर, जूली के पास, खड़ी हो गई। जूली प्रश्नसूचक दृष्टि से उमासुंदरी की ओर देखने लगी।

मानदादेवी ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से ओंकार की ओर देखते हुए कहा—"कहाँ जाना है लल्लन?"

उमासुंदरी ने हास्यमयी दृष्टि से अपनी सास की ओर देखा। ओंकार ने पहले उमासुंदरी की ओर देखा, और फिर अपनी मा की ओर देखते हुए कहा—"क्या अभी तक तुमसे कहा नहीं?"

मानदादेवी ने हँसते हुए कहा—"कहने का मौक़ा ही कहाँ आया। अभी तक तो हम सास-बहू झगड़ रही थीं।"

ओंकार ने हँसते हुए कहा—"तुम चलने को तैयार न होती होगी, इसीलिये झगड़ा होता होगा। यह तो ठीक है। तुम मेरे मान की क़द्र हो। तुम भी उसी से ठीक रहती हो, जो तुम्हें नाकों चने चबुआए रहे।"

उमासुंदरी, ओंकार और मानदादेवी, तीनों हँस पड़े। हास्य की तरंगे वायु-मंडल में एक हलकोरा पैदा कर ईर्ष्या से तीनों की ओर देखती हुई विलीन हो गई।

ओंकार ने आगे बढ़कर कहा—"आज चलो, तुम्हें जूली के घर घुमा लावें। जूली की मा से तुम्हारा परिचय करा दें। वह भी तुम्हारी तरह भगवद्भजन में लीन रहती हैं। दोनों का परिचय करा देने से तुम दोनों की खूब बनेगी। यह तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि जूली की मा को थोड़ा-थोड़ा हिंदी का ज्ञान है। एकाध शब्द वह कह लेती हैं, और बहुत कुछ समझ लेती हैं। जब मैंने उनसे यह पूछा कि आपको हिंदी का ज्ञान कैसे हुआ, तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि यह मेरे जीवन का अपना भेद है।"

मानदादेवी को कहीं आना-जाना ज्यादा अच्छा न लगता था। वह एकांत में ही अपने पुत्र और वधू के साथ सुखी थीं। उन्होंने ओंकार के प्रस्ताव पर कोई उत्साह प्रकट नहीं किया।

उमासुंदरी धीरे से अपनी सास के पास जाकर बोली—"कहो, अब तो माला फेरने की देरी न होगा? बेटा कहता है, भला बेटे की बात कैसे टालोगी!"

ओंकार ने पूछा—"क्या बात है अम्मां?"

मानदादेवी ने खिन्न स्वर में कहा—"है क्या, तुम दोनों की बदमाशी है। एक साधक बनता है, तो एक सिद्ध बनता है। दो घड़ी बैठकर राम-राम न करने दोगे।"

उमासुंदरी ने उसी तरह धीमे स्वर में कहा—"अब चलने का मन हो गया।"

मानदादेवी ने सरोष कहा—"नहीं, मैं न जाऊँगी। तुम दोनों हो आओ।"

ओंकार ने मा के पास आकर कहा—"हाँ, कैसे न चलोगी, देखूँ। जानती हो, हम तीन हैं। ओवरकोट ले तो आना में जबरदस्ती पहना देता हूं। चलना पड़ेगा। हजारों रुपये खर्च करके पेरिस आई, और यहाँ घूमें-फिरेंगी नहीं। गुलामी का गीत बैठे-बैठे गाएँगी।"

उमासुंदरी बात-की-बात में अपने पहनने का नया ओवरकोट ले आई, और ओंकार जबरदस्ती पहनाने लगे। मानदादेवी आपत्ति करने लगीं। उन्होंने कहा—"अरे, तुम लोग न मानोगे। मैं चलती हूं, लेकिन यह एक गधे का बोझ मेरे ऊपर न लादो। मैं शाल ओढ़कर चलूँगी। मैं अपनी पुरानी चाल नहीं छोड़ती, और न मुझे अच्छा ही लगता है।"

ओंकार ने बहुत अनुनय-विनय की, सरदी का भय दिखलाना, लेकिन मानदादेवी किसी तरह राजी न हुईं। उन्होंने शुद्ध भारतीय वेष में जाना स्वीकार किया। केवल ओंकार के बहुत अनुरोध से उन्होंने जूते—विलायती फैशन के, ऊँची एड़ी के जूते—पहने।

उस दिन शाम को जब पेरिस विद्युत-लैंपों से रत्न-जटित परिधान पहन रहा था, उमासुंदरी, मानदादेवी, जूली और ओंकार अपनी मोटर में बैठकर 'रू-दी-नात्रेदाम' की ओर चल दिए। उमासुंदरी का मन उत्साह से बांसों उछल रहा था, और मानदादेवी एक विचित्र भावावेश में चुप बैठी थीं। विधाता का विधान तीनों को खींचकर किसी अनिश्चित लक्ष्य की ओर सवेग ले जा रहा था।

(४)

रू-दी-नात्रेदाम पर एक विशाल अट्टालिका है, जो बहुत प्राचीन काल से फ्रांस के राजपरिवार के वंशजों के अधीन है। फ्रांस की राज्यक्रांति होने

के बाद यह अट्टालिका नैपोलियन के अधिकार में आ गई थी, और इसका स्वामी काउंट लोवन अपनी सारी जायदाद छोड़कर इङ्गलड की शरण में चला गया। काउंट लोवन की जायदाद के साथ यह मकान भी ज़ब्त होकर नैपोलियन के अधिकार में चला गया। काउंट लोवन ने इँगलैंड में ही अपना विवाह किया, और वहां के नागरिक हो गए। सन् १८१५ में नैपोलियन को क़ैद कर सेंटहेलना भेज दिया गया। उसके बाद राजसत्तात्मक और फिर प्रजातंत्र-शासन स्थापित हुआ। काउंट लोवन सन्१८४० में स्थायी रूप से अपनी जन्म-भूमि में आकर बस गए। इस समय यद्यपि वह बूढ़े हो गए थे, परंतु उनकी एकांत कामना यही थी कि उनका शव पेरिस में उनके पितृ पुरुषों के समीप ही, दफ़नाया जाय। उन्होंने अनवरत परिश्रम से अपने पुश्तैनी घर का उद्धार तो कर लिया, लेकिन ज़मींदारी किसी तरह भी वापस नहीं मिली। वह दैव के विधान से राष्ट्रीय संपत्ति हो गई।

जिस समय काउंट लोवन अपनी मातृभूमि को लौटे, उनके दो पुत्र और एक कन्या थी। एक पुत्र दो घर आकर ही काल-कवलित हो गया, लेकिन एक पुत्र और कन्या को अपना उत्तराधिकारी छोड़कर मरे थे। कन्या का विवाह हो गया, और वह अपने पति के साथ रूस चली गई। पुत्र ने अपना विवाह किया, और उसके भी संतान हुई, परन्तु जीवित एक भी न रही। अंत में सन् १८६५ में, जो बालक (लुई लोवन) उत्पन्न हुआ, वह जीवित रहा। वह अपने माता-पिता का लाड़ला पुत्र था। एक दिन भयंकर प्लेग के प्रकोप से लुई लोवन के माता-पिता एक साथ ही काल-कवलित हो गए।

भगवान् की प्रेरणा से लुई लोवन का भरणपोषण लुई रोमाँ, ओंकार के शिक्षक के पिता, के सिर पड़ा, क्योंकि उनका और लोवन-परिवार का बहुत घनिष्ठ संबंध था। यह घनिष्ठता उस दिन और बढ़ गई, जिस दिन लुई रोमाँ की सहोदरा मेरी मैडिलीन का पाणि-ग्रहण लुई लोवन से हो गया। मेरी मैडलीन एक शिक्षित और अनिंद्य सुंदरी स्त्री थी। भावुक होने के साथ-साथ वह प्रेम और पवित्रता की जीवित मूर्ति थी, किंतु सौभाग्यवती रहने का विधान विधि ने नहीं रचा था। विवाह के दूसरे ही महीने में, सन् १६२० की पहली फरवरी को, इन्फ्लूएंजा से लुई लोवन एक ही रात में काल-कवलित हो गया। दूसरी फरवरी को सूर्य की सुनहली किरणों ने मेरी मैडिलीन को विधवा-वेष में देखा। इसी मेरी मैडिलीन की कन्या का नाम जूली था।

मेरी मैडिलीन इस समय प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त होकर भगवद्भजन में लीन थी, और अपनी पुत्री के साथ अपने पति के पैत्रिक घर में रू-दी-नात्रेदाम में रहती थी। लुई रोमाँ अपनी भाषा के प्रकांड पंडित थे, और उनकी ख्याति दूर-दूर देशों में थी। वह इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के विशेष निमंत्रण मिलने पर, सन् १६२२ में, वहाँ के फ्रेंच-भाषा के प्रोफेसर होकर चले गये थे। वह अपने परिवार-सहित गए थे। और सन् १६२२ से सन् १६३४ तक भारत में ही रहे। इन बारह वर्षों में वह एक बार भी अपनी जन्मभूमि नहीं आए। सन् १६२३ में उन्हें पत्र द्वारा पता चला कि उनकी बहन ने एक धनी भारतीय से विवाह कर लिया है, और उससे उनके एक बालिका पैदा हुई है। वह बालिका यही जूली थी। लुई रोमाँ ने उत्तर में हर्ष प्रकट किया था, और भारतीयों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी परन्तु विधि का विधान सदैव से एक अभेद्य रहस्य रहा है। अचानक

एक दिन उन्होंने सुना कि उनकी सहोदरा का वह भारतीय पति समुद्र में डूब जाने से मृत्यु को प्राप्त हो गया है, जब 'कोरोना' नामक जहाज तूफान में पड़कर एक चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो गया था। लुई रोमाँ ने निराशा-पूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर देखा, और समवेदना का एक मार्मिक पत्र लिखकर मेरी मैडिलीन को धैर्य बँधाया! उन्होंने उसे भारत में आने को आमंत्रित किया, किन्तु मेरी मैडिलीन ने अपनी सम्मति नहीं दी। वह अपने मृत पति की यादगार लेकर ही व्यस्त रही।

लुई रोमां के मन में यह विचार कई बार आया कि मेरी मैडिलीन के भारतीय पति का पता वगैरह पूछकर यहां उनके परिवार से मिले, लेकिन उन्हें इतना साहस कभी नहीं हुआ। वह अपनी बहन के भावुक स्वभाव से भली भाँति परिचित थे। उसके बारे में कोई प्रश्न उसे दुखी करने के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह उस इच्छा को कभी प्रकट न कर पाए। अंत में, जून सन् १९३४ में, वह प्रयाग विश्वविद्यालय से सदा के लिये बिदा होकर अपने देश चले गए। परन्तु अपने बड़े लड़के को, जो उसी विश्वविद्यालय में इकॉनॉमिक्स (अर्थशास्त्र) का प्रोफेसर हो गया था, भारत में ही छोड़ गए।

ओंकार लुई रोमां के प्रिय छात्रों में से थे। ओंकार को फ्रेंच-भाषा से प्रेम था, और इसीलिये उन्होंने अपने बी० ए० कोर्स में फ्रेंच लिया था। उनका फ्रेंच-भाषा-ज्ञान इतना विशद हो गया था कि प्रोफ़ेसर लुई रोमाँ ने उन्हें उसी भाषा में एम्० ए० करने को उत्साहित किया ओंकार की प्रतिभा लुई रोमाँ-जैसे प्रकांड पंडित को गुरु पाकर देदीप्यमान हो उठी। लुई रोमॉ भी उसे अपने पुत्र की भांति प्यार करते थे। शिक्षक का प्रेम उसी

बालक पर होता है, जो उसके पाठ्य विषय को अधिक मनोयोग से पढ़ता है। कई कारण-वश लुई रोमां सन् १९३४ के बाद भारत में नहीं ठहर सके, और अपने प्रिय छात्र ओंकार को एम्० ए० की उपाधि से भूषित नहीं देख सके। जिस वर्ष वह गए, उस वर्ष ओंकार ने एम्० ए० प्रीवियस पास किया था। चलते-चलते लुई रोमाँ ने ओंकार से कहा था—"मेरे पुत्र, तुम कभी धैर्य न छोड़ना। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम निकट भविष्य में मेरा नाम संसार में प्रख्यात करोगे, और मुझे तुम्हारा गुरु कहलाने का गौरव प्राप्त होगा। तुम डॉक्टरेट के लिये पैरिस आना। मैं चलकर अभी से तुम्हारे लिये प्रबंध करता हूं। वह मेरे लिये बड़े गौरव का दिन होगा, जब तुम पैरिस को अपनी प्रतिभा से चकित करोगे। और, मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है।"

कहते-कहते मोशियो लुई रोमां की आँखों में झलझलाहट हो आई थीं। वह क्षण-भर तक ओंकार का हाथ पकड़े रहे। ओंकार उन्हें प्रणाम किया, और कलकत्ता—बांबे-मेल मंद गति से चलने लगी दोनों के नेत्र सजल थे।

और, हुआ अंत में वही, जो प्रोफ़ेसर लुई रोमां ने भविष्यवाणी की थी। ओंकार सम्मान-पूर्वक एम० ए० पास हुए, और युनिवर्सिटी ने उन्हे स्कॉलरशिप दिया कि वह पैरिस जाकर विशेष अध्ययन कर डॉक्टर की उपाधि लावें। ओंकार ने वह सुसमाचार मोशियो लुई रोमां को लिखा। उत्तर में केवल एक आनंदमय निमंत्रण था। ओंकार ने अपनी माता के लाख आपत्ति करने पर भी जाना ही निश्चित किया। अंत में उनकी विधवा माता मानदादेवी और पत्नी उमासुन्दरी भी उनके साथ विदेश जाने के लिये सन्नद्ध हो गई थीं।

(५)

मैडम मेरी मैडिलीन ने आगे बढ़कर अपने अतिथियों का स्वागत किया। ओंकार ने अपनी माता का परिचय कराया, और फिर उमासुंदरी का। इस समय मानदादेवी की विचित्र हालत थी। जिस प्रकार मदारी कठपुतलियों को नचाता है, उसी तरह ओंकार अपनी मा को नचा रहे थे। और, जैसे कठपुतलियों में अपनी निज की चलन-शक्ति नहीं होती, वैसे ही मानदादेवी में भी नहीं थी। वह मखमली सोफा पर एक ओर बैठ गईं।

मेरी मैडिलीन को यह प्रथम अवसर किसी भारतीय रमणी से साक्षात् करने का प्राप्त हुआ था। वह नहीं जानती थीं कि किस प्रकार उनका आदर-सत्कार प्राप्त करे। ओंकार से तो कई मर्तबे मिल चुकी थी, और जूली व उमासुंदरी में विशेष अंतर नहीं था। यदि कोई कठिनता थी, तो वह मानदादेवी के साथ थी। दोनों बैठकर थोड़ी देर तक एक दूसरे का मुँह देखती रहीं।

अंत में मेरी मैडिलीन ने ओंकार से कहा—"आप मेहरबानी करके अपनी मा को समझा दें कि वह इस घर को अपना ही घर समझें, किसी प्रकार की असुविधा अनुभव न करें।" ओंकार ने सहज भाव से कहा—"आप घबरायें नहीं, मेरी मा को कोई असुविधा नहीं है।" इसी समय जूली और उमासुंदरी दौड़ती हुई कमरे में आईं। उनके हाथ में एक फोटो था। उमासुंदरी ने आकर वह चित्र मानदादेवी को दिखाकर कहा—"अम्मा, देखो, क्या यह अपने बाबू जी की तसवीर नहीं है? है तो बिलकुल वैसी ही, जैसी तुम्हारे कमरे में, प्रयाग में, लगी हुई है। अंतर केवल इतना है कि उसमें पायजामा और शेरवानी है, और इसमें कोट और पैंट। यह तसवीर यहाँ कहां से आई। जूली कहती है, यह मेरे पिता की तसवीर है।"

मानदादेवी और ओंकार ने एक साथ देखा। मानदादेवी चौंक पड़ी, ओंकार भी चकित हो गए। वास्तव में यह चित्र तो उनके मृत पिता और मानदादेवी के पति (राजेन्द्रप्रसाद) का ही था। मानदादेवी उमासुंदरी की ओर देखने लगी, और ओंकार अपनी माता की ओर। यह कैसा रहस्य ! उनके पिता का यह चित्र कहाँ से आया। उनके पिता तो आज से दस-ग्यारह वर्ष पहले समुद्र-यात्रा में डूबकर देवलोक प्राप्त हो गए थे।

मानदादेवी के सामने अतीत का वह दृश्य फिर गया, जब आज से १३-१४ साल पहले उनके पति, ओंकार के पिता, विश्व-भ्रमण को निकले थे, और फिर घर वापस नहीं आए। उनके मरने का ही समाचार आया। मानदादेवी ने वह हृदय-विदारक समाचार वज्र-हृदय होकर सुना, लेकिन उन्होंने ओंकार को देखकर सब्र किया। वह चतुर और कर्मशीला रमणी थीं। ज़मींदारी और जायदाद के इंतज़ाम में दक्ष थीं। उन्होंने जायदाद सँभाल ली, और ओंकार को शिक्षित करना आरंभ किया। उस समय ओंकार नितांत बालक थे, उनकी जीवन-प्रगति में कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

मानदादेवी ने अपना सिर उठाकर ओंकार से कहा—"लल्लन, यह तुम्हारे पिता का ही फोटो है। मैं नहीं समझती, यहाँ कैसे आया। जूली इसे अपने पिता का फोटो कहती है। पूछो, कोई भ्रम तो नहीं है।"

ओंकार ने मेरी मैडिलीन की ओर देखा—उसके मुख पर एक म्लान छाया छाई हुई थी। ओंकार ने उससे पूछा—"मैडम, क्या आप कृपा करके बतलावेंगी कि यह फोटो किसका है ?"

मेरी मैडिलीन के पहले ही जूली बोल उठी– 'यह मेरे पिता का है।"

फिर थोड़ी देर बाद कहा—"क्या आपको नहीं मालूम कि मेरे पिता भारतीय थे। यह बात तो मामा ने आपसे कही है।"

ओंकार ने जवाब दिया—"हाँ, यह तो मुझे मालूम है, लेकिन मैं पूछता हूं कि कहीं आप भूल तो नहीं करतीं।"

जूली ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"नहीं, भूल नहीं करती। कोई अपने पिता के पहचानने में भूल करता है! मेरा विश्वास न मानो, तो मा से पूछ लो। उन्होंने ही मुझे बतलाया है कि यह तुम्हारे पिता का फोटो है। यह फोटो सदैव मेरी मा के सोने वाले कमरे में रहता है। आज मैं उमा को दिखाते-दिखाते वहाँ ले गई, और यह चित्र भी दिखाया। वह इसे देखकर आप लोगों को दिखाने के लिये ले आई।"

ओंकार ने फिर मेरी मैडिलीम की ओर देखा, और पूछा—"मैडम, क्या जूली सत्य कहती है?"

मैडम मेरी मैडिलीन ने धीमे स्वर में कहा—"हाँ, यह सत्य है। यह मेरे दूसरे पति का फोटो है।"

मानदा ने विह्वल कंठ से ओंकार से पूछा—"क्या कहतीं हैं?"

ओंकार ने उत्तर दिया—"कहती हैं मेरे दूसरे पति का फोटो है। इनका पहला पति तो वह व्यक्ति था, जिसका यह मकान है। उसकी मृत्यु विवाह के एक ही महीना बाद हो गई थी' और बाद में इस व्यक्ति से विवाह किया, जिसका यह फोटो है। अम्मा, क्या तुम्हें इसका कुछ रहस्य मालूम है?"

मानदादेवी ने एक निःश्वास के साथ कहा—"मुझे कुछ ज्ञात नहीं। यह तो मैं तुम्हें बतला चुकी हूं कि तुम्हारे पिता विश्व-भ्रमण को निकले

थे। तीन वर्ष तक तो उनके पत्र आते रहे, और फिर सरकार की ओर से उनके स्वर्गवास का दुःखद समाचार मिला। मुंशी रामप्रसाद, मुख्तार-आम ने भी बंबई जाकर इसका पता लगाया, तो वह निष्ठुर समाचार सत्य निकला। आज से १२ साल पहले वह जहाज़ समुद्र में टकरा गया था, जिससे वह देश लौट रहे थे। वह तीन वर्ष तक कहाँ रहे, और क्या करते रहे, यह मुझे नहीं मालूम। यह हो सकता है कि उन्होंने प्रवास में इनसे विवाह कर लिया हो, और जूली उन्हीं की संतान हो। यह समाचार उन्होंने पत्र में मुझे नहीं लिखा। हाँ, इतना अवश्य हुआ था कि उनके पत्र बहुत दिनों में आया करते थे, और मुझे ठीक याद है कि एक साल तक तो उन्होंने एक तरह से पत्र लिखना ही बद कर दिया था। जब मैंने उन्हें बहुत कड़ी चिट्ठी लिखी थी, तब वह नियमित रूप से पत्र लिखा करते थे। हाँ, एक बात और याद आई। इन तीन वर्षों में उन्होंने दस लाख से ऊपर रुपया बैंक से ले लिया था। उसका रहस्य आज प्रकट होने जा रहा है।"

इसी समय जूली, जो न-मालूम कब कमरे के बाहर चली गई थी, वापस आई। उसके हाथ में दो लिफ़ाफ़े थे, जिनमें पुराने पत्र रखे हुए थे। वे पत्र उसने ओंकार को देते हुए कहा—"ये मेरे पिता के पत्र हैं, जो भारत से उनके पास आया करते थे।"

ओंकार के पहले ही मानदादेवी ने उन्हें जूली के हाथ से छीन लिया। उन्हें खोलकर देखा। वास्तव में ये उनके ही लिखे पत्र थे। मानदादेवी विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगीं।

अतीत का दृश्य उनके नेत्रों के सामने घूमने लगा। मृत पति की स्मृति जागकर उनका उपहास करने लगी, और वृश्चिक-दंशन से उसकी

आहत आत्मा को अधिकाधिक संतप्त करने लगी। उन्हें पति के विश्वास-घात की साक्षी उनके लिखे हुए पत्र दे रहे थे। वह विश्व-भ्रमण नहीं कर रहे थे, बल्कि एक विदेशिनी के प्रणय-जाल में बद्ध होकर अपनी निधि पानी की तरह लुटा रहे थे। उन्होंने आहत दृष्टि से मेरी मैडिलीन की ओर देखा। वह दूसरी शोक की प्रतिमा थी। उसके देवी-जैसे भोले मुख को देखकर उनका एकांत विषएण भाव किंचित् कम हो गया। उनकी सहज कोमलता जाग्रत् हो गई। वास्तव में इस रमणी का क्या अपराध था। वह तो ठीक उन्हीं के समान थी। उनका उन्नत मन अधिक उन्नत हो गया।

उन्होंने ओंकार से अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"लल्लन, यह तुम्हारी विमाता हैं, इन्हें प्रणाम करो। इन पत्रों के देखने से अब कोई शक नहीं रह गया। तुम्हारे पिता ने विदेश में आकर इस रमणी से विवाह किया है, और जूली तुम्हारी सौतेली बहन है।"

मेरी मैडिलीन सब कुछ समझ रही थी। उसने ओंकार से कहा—"हाँ, मेरा भी यह अनुमान सत्य हुआ कि तुम मेरे पति के पुत्र हो। तुम्हारा सादृश्य तुम्हारे पिता से इतना अधिक है कि मैंने जब पहले-पहल तुम्हें अपने भाई लुई रोमाँ के घर में देखा था, तो प्रथम साक्षात् में मुझे यही मालूम हुआ कि जूली के पिता हैं। क्या तुम्हें याद नहीं कि तुम्हें देखकर मैं थोड़ी देर के लिये अचेत-सी हो गई थी, और मेरे भाई ने तुमसे कहा था कि 'इन्हें दूसरे पति के मरने के बाद 'हिस्टीरिया' की बीमारी हो गयी है।' वह हिस्टीरिया का दौरा नहीं था, तुम्हारा जूली के पिता के समान अद्भुत सादृश्य ही इसका कारण था। फिर मैंने घर आकर तुम्हारा मिलान इस फोटो से किया, सत्य ही अद्भुत समानता थी। मैं उसी दिन

से एक विचित्र प्रकार की कल्पना करने लगी; और इसीलिए जूली को तुम्हारे घर भेजने लगी। और, आज उसी सत्य का निरूपण करने के लिये आपको सपरिवार निमंत्रित किया। दैव के विधान से मेरी वह कल्पना सत्य में परिणत हुई। मैं जिस बात की कामना अहर्निश करती रहती थी, भगवान् ने पूर्ण की। परंतु यह न जानती थी कि इतनी जल्दी और इस प्रकार मेरी इच्छा भगवान् पूर्ण करेंगे। जब मैंने पत्रों में 'कोनेना' जहाज़ के डूबने का दुःखद हाल पढ़ा, और मृत यात्रियों की सूची में तुम्हारे पिता का नाम देखा, तभी से मेरे मन में यह इच्छा जाग्रत है कि चलकर इनके भारतीय परिवार में रहूँ। किंतु तुम्हारे पिता ने कभी अपना पूरा पता जाहिर नहीं किया, और न मैंने कभी पूछा ही। मैं तो उनके प्रेम में इतनी मदांध हो गई थी कि मुझे कभी अवसर ही नहीं मिला कि मैं इस संबंध में कोई बात करूँ। मेरा उन पर अगाध विश्वास था, और अनंत प्रेम। मैं उन्हें जाने नहीं देती थी, लेकिन उन्होंने मुझे यह वचन दिया था कि मैं देश जाकर परिवार के सब लोगों को ले आऊँ। उनका यह कथन असंगत प्रतीत नहीं हुआ, और जब मैंने उनके साथ चलने को कहा, तो उन्होंने जवाब दिया कि मेरे चलने से उन पर सामाजिक आपत्ति आ सकती है। परंतु उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया था कि तीन महीने के अंदर-अंदर सब लोगों को लेकर यहाँ लौट आवेंगे। हाँ, यह कहना तो मैं भूल ही गई कि विवाह होने के पहले मैंने हिंदू-धर्म की दीक्षा ले ली थी। और इसीलिये हम दोनों लंदन गए थे, और एक हिंदू-समाज में जाकर मैंने धर्म-परिवर्तन किया था। मेरा और उनका प्रेम कैसे हुआ, यह एक विचित्र घटना है। मॉर्सेल से पैरिस आ रही थी, उसी रेल के डिब्बे में वह भी

थे। अचानक रेल किसी गाड़ी से टकरा गई। उस समय उन्होंने अपनी जान पर खेल कर मेरी रक्षा की थी। बस, तभी से हमारा परिचय अधिकाधिक गंभीर होता गया, और अंत में हम लोग उसे स्थायी करने के लिये विवाह-बंधन में बँध गए। हमारे विवाहित जीवन के एक वर्ष बाद जूली पैदा हुई। जूली का नाम ज्योत्स्ना है, किंतु अब यह इसी नाम से प्रख्यात है। जिस समय वह हम लोगों को छोड़ कर गए, जूली दो वर्ष की थी। उन्होंने जूली को अपनी गोद में लेकर शपथ-पूर्वक कहा था कि 'मैं तीन मास में सपरिवार वापस आऊँगा।' परंतु उनकी वह प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई। हाँ, किसी अंश में पूर्ण हुई, आज बारह वर्ष बाद। वह तो नहीं आए, लेकिन उनका परिवार अवश्य आया।" कहते-कहते मैडम मेरी मैडिलीन अपनी आँखें रूमाल से ढककर रोने लगी। उच्छ्वास के साथ हृदय का कई वर्षों का संचित कोष खाली होने लगा।

और, मानदादेवी? वह तो बहुत देर से रो रही थीं। दोनों ने एक दूसरे को देखा, और दूसरे ही क्षण दो पवित्र आत्माएँ आलिंगन-पाश में बद्ध होकर अपनी-अपनी मौन पीड़ा अनुभव करने लगीं।

जूली (ज्योत्सना) और ओंकार उस चित्र की ओर देखने लगे, जो उनके पिता का था। उन्हें ऐसा भ्रम हुआ, मानो चित्र हँस रहा है। वास्तव में चित्र नहीं हँस रहा था, विधाता का विधान अपनी सहज हँसी से मुस्किरा रहा था।